स्वातन्त्र्य वीर सावरकर



स्वर्गीय श्री चन्द्रगुप्त जी वेदालङ्कार

प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज़

अनारकली लाहौर

मूल्य डेढ़ रुपया

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
अनारकली लाहौर

प्रथमावृत्ति सम्वत् १९९६
द्वितीयावृत्ति ,, २००२

मुद्रक
श्री लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस
मोहनलाल रोड, लाहौर।

समर्पण

देशभक्ति से धधक रहा उर,
जिसका ज्वाला मुखी समान।
जिसके श्वास-श्वास से उठता,
घोर क्रान्तिकारी तूफ़ान॥
हे स्वातन्त्र्यवीर ! निर्भयता,
त्याग और तप के अवतार !
भक्त तुम्हारा तुम्हें दे रहा,
चरित तुम्हारा ही उपहार॥

दो शब्द

रत्नगर्भा भारतमाता ने समय-समय पर जिन दिव्य विभूतियों को उत्पन्न किया है, स्वनामधन्य स्वातन्त्र्यवीर श्री सावरकर का स्थान उनमें बहुत ऊंचा है। सांसारिक अभ्युदय के लिए जिन साधनों, जिन योग्यताओं और जिन सुविधाओं की आवश्यकता है, उन सब के होते हुए भी आप ने उठती जवानी में अपने उज्ज्वल भविष्य, सुख-समृद्धि-सम्पन्न सफल पारिवारिक जीवन, इष्टमित्रों, बन्धु-बान्धवों की सुनहरी आशाओं पर पानी फेर, भारतमाता की एक-एक आह पर अपनी अनेकानेक अतृप्त चाहों को, उसके एक एक मूक आह्वान पर दधीचि के समान अपनी अस्थि का, अपने रक्त की एक-एक बून्द को, अपने जीवन के एक-एक क्षण को बलिदान कर दिया। इतना बड़ा त्याग इस युग में किसने किया है? श्री सावरकर के हृदय में हिंदुत्व की भावना प्रचण्ड आंधी की तरह उमड़ रही है। हिंदू संस्कृति, हिंदू राष्ट्र के लिए कोई ऐसा कष्ट नहीं जिसे आपने हंसते हँसते नहीं झेला?

जब से श्री सावरकर महोदय ने हिंदूमहासभा की बागडोर को अपने हाथों में लिया है, उसकी काया ही पलट गई है। वह शुद्ध राष्ट्रीय रूप में प्रकट हो रही है। देशके सम्मुख जो विकट समस्यायें खड़ी हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े मस्तिष्कों को चक्कर में डाल रक्खा है, देश के बड़े बड़े नेता जिनके सामने हार मान चुके हैं, गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय महासभा जिनका समाधान नहीं कर सकी, उन्हें ही श्री सावरकर सुलझाने का दावा कर रहे हैं। गांधीजी मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं कि (१) उनकी सम्मति में साम्प्रदायिक एकता के बिना भारत स्वाधीन नहीं हो सकता। (२) वे

साम्प्रदायिक एकता करवाने में असफल हो गए हैं। ऐसी दशा में देश को चाहिए कि वह उसी ईमानदारी से, जिससे कि उसने गांधीजी को मौक़ा दिया, उनका सहयोग किया, उसी तरह वे श्री सावरकर को भी मौका दें। कोई भी नेता एक दिन में, एक वर्ष में चमत्कार करके नहीं दिखा सकता। यद्यपि ऐसे दावे किए जरूर गये, पर वे सफल न हो सके। आज भारत की दशा उस रोगी के समान है जिसकी कमज़ोरी को दूर करने के लिए चिकित्सक ने उससे निरन्तर सात दिन का उपवास करवाया हो, किन्तु कमज़ोरी को बढ़ती देख फिर पन्द्रह दिन का, उस पर भी हालत को लगातार गिरता देख फिर बीस दिन का उपवास करवाया हो। अन्त में जब नाड़ी छूट गई तो कह दिया हो कि मैं तो केवल एक ही चिकित्सा जानता हूँ और वह यही—उपवास चिकित्सा। यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास न हो तो किसी और डाक्टर को बुला लो। दूसरे डाक्टर को बुलाया गया। उसने रोगी की परीक्षा कर कहा "इसका इलाज उलटा हो रहा है। नाड़ी छूट चुकी है। अब कुछ नहीं हो सकता। तो भी यदि तुम कहो तो मैं यत्न कर देखता हूँ। किन्तु पहले इस डाक्टर को यहां से हटा दो जिससे मेरी चिकित्सा में कोई हस्ताक्षेप न कर सके।" क्या देश श्री सावरकर को ऐसा अवसर देगा ?

श्री सावरकर को जीवनी, उनकी भावनाएं, उनके विचार, उनकी योजनाएं देश के लिए बड़े काम की वस्तु हैं, इनमें देश के भावी कार्य-क्रम की रूप रेखा दृष्टिगोचर होती है। श्री पं० चन्द्रगुप्त वेदालंकार ने इन्हें अत्यन्त ओजस्वी, मर्मस्पर्शी तथा जोरदार भाषा में हिन्दी जगत के सामने रखने का सराह-

-नीय कार्य किया है। इसके लिए श्री वेदालंकार जी से अधिक उपयुक्त शायद कोई व्यक्ति मिल ही न सकता था। श्री वेदालंकार जी ने श्री सावरकार जी के विचारों का गंभीर अध्ययन किया है। उनके निकट संपर्क में रह कर उन्हें समझा है। हिन्दूमहासभा के प्रमुख कार्य-कर्ता के रूप में भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक घूम २ कर कार्यान्वित किया है। जनता ने आपको 'छोटा सावरकर' का नाम ही दे दिया है। आपके हृदय में अदम्य उत्साह है, अपने विश्वासों के प्रति ईमानदारी है, असाधारण कार्य क्षमता है। आपके भाषण में जादू, और आपकी लेखनी में बल है। आप भारतीय राजनीति के आकाश में उदीयमान एक अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्र हैं। श्री सावरकर की जीवनी लिख कर आपने देश की बहुत बड़ी सेवा की है।

आशा है यह जीवनी देश के नवयुवकों में जीवन का संचार करेगी, उन्हें त्याग और देश-भक्ति की भावना के साथ-साथ उनमें हिन्दुत्त्व की ज्योति प्रज्वलित करेगी और देश को सच्ची राष्ट्रीयता के पथ पर अग्रसर करने में सहायक होगी।

वागीश्वर विद्यालंकार

[प्रो० संस्कृत साहित्य,
गुरुकुल कांगड़ी]

विषयानुक्रमणिका

❀

स्वातंत्र्यवीर सावरकर

प्रथम पर्व

—:o:—

वंश परिचय

महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मणों का वंश भारत में अत्यन्त प्रसिद्ध है। विगत दो शताब्दियों से इस वंश में निरन्तर ऐसे महापुरुष जन्म लेते रहे हैं जिन्होंने अपनी प्रिया भारत भू की स्वतन्त्रता के लिये विदेशियों से जूझते हुए अपने प्राण तक देना गौरव का चिह्न समझा है। इसी वंश के महावीरों ने यवनों द्वारा पादाक्रान्त हो रही हमारी आर्य्यभूमि को छुड़ा कर एक बार फिर से स्वतन्त्र हिन्दू राष्ट्र की विजयवैजयन्ती लहराई थी। इसी वंश के सुदृढ़ सेनापतियों ने सिन्धु नदी को पार कर, अटक के दुर्गम दुर्ग को जीतकर, आर्य्य जाति की प्राचीन सीमा पर हिन्दू-राष्ट्र की महाविजय की गहरी छाप बिठाई थी। इसी वंश के देशभक्तों ने १८५७ के स्वातंत्र्ययुद्ध में ब्रिटिशसिंह से भयंकर

मोर्चा लेकर इस पुण्यभूमि को विदेशियों से सर्वथा शून्य करने का दृढ़ सङ्कल्प किया था। इसी वंश के युवक अपनी क्रान्तिकारी प्रगतियों द्वारा वर्षों तक लार्ड कर्ज़न जैसे साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों की आंखों में कांटे की भाँति चुभते रहे। प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ इसी वंश में हुए। भारतीय सेनापतियों में प्रथम श्रेणी के सेनानी पेशवा बाजीराव इसी वंश के थे। तृतीय पानीपत संग्राम के वीर सेनापति सदाशिवराव भाऊ, १८५७ के राष्ट्रीय जागरण के नेता नाना साहब, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति करने वाले वासुदेव बलवन्त फड़के, पूना के ब्रिटिश अधिकारियों को मार कर प्राणदण्ड पाने वाले चापेकर बन्धु और रानाडे—ये सब चितपावन वंश के थे। श्रीयुत गोखले, जस्टिस रानाडे और लोकमान्य तिलक भी इसी वंश में उत्पन्न हुए थे। इसी वंश में दामोदरपन्त सावरकर हुए। दैव से इन्हीं के घर में १८८३ ई० में उस दिव्य बालक ने जन्म लिया जो आगे चलकर 'क्रान्तिकारियों का राजकुमार' बना, जिसे विदेशी लोगों ने 'हुतात्मा' कह कर पुकारा, जिसे योरुपीय राजनीतिज्ञों ने मेज़िनी, गेरिबाल्डी, क्रोपाटकिन, वुल्फटोन और एमेट कह कर उसकी प्रशंसा की और जिसे अखिल हिन्दूराष्ट्र ने छत्रपति शिवा के रूप में देखा। इस बालक का नाम विनायक रक्खा गया। ये सब तीन भाई हैं और 'सावरकर बन्धु' नाम से विख्यात हैं। बड़े का नाम गणेश है और छोटे का नारायण।

द्वितीय पर्व

शैशवकाल

किशोरावस्था में ही विनायक में ईश्वरप्रदत्त दैवीय शक्तियाँ दृष्टिगोचर होने लगीं। इनके पिता इनमें ऊँची भावनायें भरने के लिये महाभारत और रामायण की कहानियाँ तथा शिवा, प्रताप, भाऊ आदि राष्ट्रीय वीरों के गीत सुनाया करते थे। होमर और ईलियड के गीत सुनाने का भी इन्हें बहुत चाव था। दामोदरपन्त सावरकर स्वयं भी एक अच्छे कवि थे। वे अपने पुत्र में भी काव्यशक्ति उत्पन्न करने के लिये मराठी भाषा के प्रख्यात कवि वामन, मोरोपन्त और तुकाराम की कवितायें सुनाया करते थे। इससे इनमें बचपन से ही ऐसी अनुपम काव्यशक्ति उत्पन्न हुई कि दस वर्ष की आयु में ही इन्होंने मराठी भाषा में कविता करनी आरम्भ की और मराठी के प्रसिद्ध पत्र उन्हें चाव से छापने लगे, यद्यपि उन्हें छापते हुए वे यह न जानते थे कि इनका निर्माता दस-बारह वर्ष का बच्चा ही है।

घर के एक कोने में बहुत सी पत्र-पत्रिकायें पड़ी रहती थीं। इनमें महाभारत का मराठी अनुवाद, 'केसरी' पत्र की प्रतियाँ तथा मराठा वीरों की विजय-यात्रओं के विवरण मुख्य थे। खाली समय में विनायक इन्हें पढ़ा करते और अपने साथियों में वैसे

ही भाव भरा करते थे। वे इन भावों से इतने भर गये थे कि उनकी दैनिक खेल-कूद और आमोद-प्रमोद ने भी महाराष्ट्र और राजस्थान की पुरानी कहानियों का रूप धारण कर लिया था। इन कृत्यों से वे अपने मित्रों में विद्वान्, देशभक्त और ओजस्वी वक्ता के रूप में पूजे जाने लगे। १८९३ से १८९५ ई० तक भारत में धर्मान्धता ने बहुत ज़ोर किया। हिन्दू-मुस्लिम दंगे उन दिनों चर्चा का प्रमुख विषय था। अन्य प्रान्तों की भाँति महाराष्ट्र भी इससे अछूता न रहा। बम्बई, पूना, येओला और अन्य स्थानों में मुसलमानों की पाशविक मनोवृत्ति द्वारा हिन्दुओं पर किये गये भीषण अत्याचारों ने विनायक के कोमल हृदय को उद्वेलित कर दिया। अपनी जाति पर हुए अत्याचारों का बदला लेने के लिये इन्होंने अपने साथियों की एक आवश्यक सभा बुलाई। गाँव के बाहर एक मस्जिद थी। उसे नष्ट कर बम्बई में तोड़े गये मंदिरों का उचित प्रतिकार करना सर्वसम्मति से निश्चय किया गया। शिवाजी की गौरीला नीति के अनुसार बारह मराठा युवकों ने, जिनकी आयु चौदह से अधिक न थी, मस्जिद पर हमला बोल दिया। कोई शत्रु सामने न आया। बात की बात में मस्जिद तोड़ दी गई। उस पर क़ब्ज़ा कर लिया गया। दीवारें और मीनारें टूक-टूक कर दी गईं। काम पूरा हो गया। अब भागने की आज्ञा हुई। कायरता है, एक साथी ने ज़ोर से कहा। आवश्यकता पड़ने पर शिवाजी भी भाग जाते थे, विनायक ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

यह कह कर सब भाग खड़े हुए। इस घटना को अभी सात ही दिन हुए थे कि स्कूल के मुसलमान लड़कों ने हिन्दू लड़कों को लड़ने की चुनौती दी। हिन्दुओं के सेनापति विनायक ने चुनौती स्वीकार की। स्कूल के बराण्डे में दोनों की भयंकर मुठभेड़ हुई। विनायक की दूरदर्शिता के कारण हिन्दू लड़के पिन, कांटे और क़लम घड़ने के चाकुओं से सुसज्जित थे और मुसलमानों को जोश में इन का ध्यान भी न आया। उस दिन मुसलमान इस बुरी तरह पिटे कि इन्हें भागना भी दूभर हो गया। अन्तत: अध्यापकों की शरण ली। एक लम्बे, पतले अरब लड़के ने विनायक के मुँह में मच्छी का मांस डाल कर इन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाने की धमकी दी। परन्तु उसे अपनी यह थोथी धमकी उससे भी कहीं अधिक जल्दी भूल गई जितनी जल्दी कि वह अपना दैनिक पाठ भूलता था। अब विनायक ने हिन्दू लड़कों में अनुशासन और सैनिक भाव भरने के लिये नक़ली लड़ाइयां आरम्भ कीं। इन लड़ाइयों में हिन्दुओं का एक दल अङ्गरेज़ों और मुसलमानों का प्रतिनिधि बनता और दूसरा हिन्दुओं का। विरोधी दल की ओर से लड़ने के लिये लड़के बहुत कठिनता से तय्यार होते थे, क्योंकि हिन्दू के विरुद्ध लड़ना वे बुरा समझते थे। इस के अतिरिक्त विजय सदा हिन्दू दल की ही होती थी और यदि कभी वह हारने भी लगता तो हिन्दुओं में विजय की भावना

भरने के लिये उसे जान बूझकर जिताया जाता था। इस कारण भी विरोधी दल में लड़ने वाले कम मिलते थे।

अपने पिता के साथ विनायक प्रतिदिन देव-पूजा किया करते थे। घर में दुर्गा की एक भव्य मूर्ति थी। उन्हें मालूम था कि शिवा जी देवी दुर्गा (भवानी) की बहुत प्रतिष्ठा करते थे। इनके लिये भी यह प्रेरणा का काम करती थी। ये घण्टों तक उसके चरणों में बैठे रहते, अपने सुख-दुःख की कथा कहते और अपने देश तथा जाति को दुःखों से छुड़ाने के लिये उस से सहायता की याचना भी करते थे। विनायक की माता दस वर्ष की आयु में ही सिधार गई थी। तदनन्तर पिता ने माता का भी स्थान ले लिया और पालन पोषण से लेकर भोजन पकाने तक का काम स्वयं करने लगे। इस पर भी इन्होंने भगवती दुर्गा की पूजा कभी न छोड़ी क्योंकि वह अब इनकी जीवित माता का स्थान ले चुकी थी।

१८९७ ई० में महाराष्ट्र में राजनीतिक जागरण बहुत ज़ोर का हुआ। राष्ट्रीय महासभा का शानदार अधिवेशन, शिवाजी जयन्ति और गणपति उत्सव-इन सब बातों ने मराठा युवकों में एक अभूत पूर्व आन्दोलन उत्पन्न कर दिया। पूना इस हलचल का केन्द्र था। पूना के इस राजनीतिक वातावरण में चौदह वर्ष के विनायक पल रहे थे। दैनिक पत्रों में प्रतिदिन के समाचार पढ़ कर ये अपने

साथियों के साथ गंभीर वार्तालाप किया करते थे। इसी बीच एक दिन इन्होंने बहुत ही उत्तेजनात्मक समाचार पढ़ा जैसा कि वासुदेव बलवन्त फड़के के समय से पढ़ने को न मिला था। उन दिनों पूना में भयंकर प्लेग फैली हुई थी। अङ्गरेज़ अधिकारियों का प्रबन्ध बहुत असंतोषजनक था। अपने इस भद्दे व्यवहार के कारण पूना के अंग्रेज़ अधिकारी ठीक उसी दिन मार डाले गये जब कि सारा भारत महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती मनाने को था। यह समाचार बिजली की भाँति सब जगह फैल गया। धर पकड़ आरम्भ हुई। नातु बन्धु निर्वासित किये गये। लोकमान्य तिलक पकड़े गये और जेल भेज दिये गये। चापेकर बन्धुओं को प्राणदण्ड दिया गया। कुछ ने चापेकर बन्धुओं को 'हत्यारा' कह कर निन्दा की और कुछ ने "हुतात्मा" कह कर उनकी प्रशंसा की। विनायक इन्हीं वीरों में से एक थे। चापेकर बंधु यरवदा जेलमें फांसी पर लटकाये गये। उस दिन उन्होंने बहुत प्रातः उठकर प्रार्थना की और भगवद्गीता का पाठ करते हुए फांसी पर झूल गये। विनायक के बाल-हृदय पर इस घटना का बहुत प्रभाव पड़ा। विनायक आप ही आप बोलने लगे "चापेकर उठती जवानी में ही चल दिये। उन्हों ने अपनी मातृभूमि के लिये सब कुछ न्योछावर कर दिया। तो क्या मुझे खा पीकर मौज उड़ाना ही शोभा देता है? उनका काम अधूरा पड़ा है।

उनकी इच्छाएं अपूर्ण खड़ी हैं। क्यों न मैं वचन लूं कि उनके कार्य को पूरा करने में अपने प्राण तक दे डालूंगा। मैं उसे पूरा करूंगा अन्यथा उसके प्रयत्न में जीवन दे डालूंगा। वे झट से दुर्गा के चरणों में उपस्थित हुए। उस से अपने उद्देश्य में सहायता मांगी जैसी कि उसने शिवाजी को उनके कार्यों में दी थी। इसके बाद शांत खड़े होकर इन्हों ने प्रतिज्ञा की "मैं भारत-माता की शृङ्खलायें तोड़ने के लिये अपना जीवन अर्पण करूंगा। मैं गुप्त संस्थायें खोलूंगा, शस्त्र बनाऊंगा, और समय आने पर हाथ में शस्त्र ले कर स्वतंत्रता के लिये लड़ता लड़ता मरूंगा।" यह बचपन है, ऐसा सयाने लोग बोलेंगे, परन्तु उस दिन के बाल विनायक ने युवा बनकर "अभिनव भारत" संस्था द्वारा इनमें से एक एक को दृढ़ सत्य के रूप में संसार की आंखों के सम्मुख रख दिया। जब विनायक यह शपथ ले रहे तो थे भगवती भवानी प्रसन्न-वदन हो इन्हें माता के समान आशीर्वाद दे रही थी। इस दृश्य का इन पर हृदयग्राही प्रभाव पड़ा।

उस दिन से इन्हों ने अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिये नियम-पूर्वक कार्य आरम्भ किया। अपने साथी चुने और उनमें भावना भरने के लिये चापेकर बन्धुओं की स्तुति में एक सुन्दर गीत बनाया। जब इन्होंने पहलेपहल अपने साथियों को यह गीत सुनाया तो उन्हें विश्वास न हुआ कि यह विनायक का बनाया हुआ है। जिन्हों ने उसे उस दिन सुना था, उन्हें आज तक स्मरण है कि

इस गीत ने उनमें कितना उत्साह भरा था और उन्हें कितना रुलाया था। इधर प्लेग का रोग भीषण रूप धारण कर रहा था। सहस्रों लोग इसके कारण काल के ग्रास बन रहे थे। विनायक के पिता दामोदरपन्त भी इसके शिकार हुए और परलोक सिधार गये। मातृहीन और पितृहीन बच्चों को अधिकारियों की कठोर व्यवस्था को भी सहना पड़ा। पिता के मृतदेह को अधिकारियों के सुपुर्द कर तुरन्त घर छोड़ने को आज्ञा हुई। इस समय गणेश के मित्र रामभाऊ दातार ने इन्हें अपने घर नासिक में बुलाया और हर प्रकार की सहायता दी। इस बीच में छोटे भाई नारायण भी प्लेग के शिकार हो गये थे। उन्हें लेकर गणेश प्लेग चिकित्सालय में उन की सेवा करने लगे और विनायक मित्र के यहां ही रहे। परन्तु नासिक भी प्लेग से खाली न था। लोग नगर छोड़ छोड़ कर भाग रहे थे। शांत रात में सारा नगर काले भूत के समान भयानक प्रतीत होता था। काली रात में जब विनायक अपने छोटे भाई का भोजन लेकर चिकित्सालय जाते थे तो मार्ग की शून्य गलियों में शव उठाये 'राम बोलो भाई! राम' की रट लगाती हुई टोलियां महामारी की भीषणता से विनायक को भयभीत करती थीं, परन्तु इन्हें अभी इस से भी अधिक कष्ट सहने थे। एक रात जब विनायक अपने छोटे भाई का भोजन लेकर चिकित्सालय गये तो सदा की भाँति इनके बड़े भाई मिलने न

आए। ये घण्टों प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु कोई न आया। बहुत देर हो जाने पर इन्हें ज्ञात हुआ कि गणेश सेवा करते करते प्लेग के वशीभूत हो गये हैं। उस रात घर लौट कर विनायक एक कोने में जाकर दुःख के मारे फूट फूट कर रोने लगे। परन्तु रोने से क्या बनता था? अतः ये और इनकी भाभी दोनों सेवा में लग गये। शीघ्र ही दोनों भाई स्वस्थ हो गये और सावरकर बन्धुओं ने मिल कर इस कृपा के लिये ईश्वर को धन्यवाद दिया। इस काल में भी विनायक अपने राजनीतिक उद्देश्यों को न भूले। यहाँ तक कि उस समय जब कि दोनों भाई रोगशय्या पर पड़े थे और इन्हें भी महामारी होने का डर था, इन्होंने अपना काम जारी रक्खा। इन्हें ऐसे साथी ढूंढने में देर न लगी जो इनके उद्देश्य में साथ देने को उद्यत थे। इन द्वारा सन् १६०० में नासिक में 'मित्रमेला' नाम से एक संस्था बनाई गई। पुलिस विवरणों के अनुसार यह अपने आरम्भ से ही एक क्रांतिकारी संस्था थी और इसका उद्देश्य सशस्त्र क्रांति द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। यह संस्था अपना कार्य गुप्त और प्रकट—दोनों प्रकार से करती थी। इस ने किस प्रकार क्या क्या काम किया, वह न तो हमें ज्ञात ही है और न यहाँ उसके विस्तार में ही जाना आवश्यक है। इधर-उधर बिखरे हुए सरकारी विवरणों, भयंकर कारावास दिये गये संस्था के अनेक नेताओं और न्यायालयों द्वारा दिये गए निर्णयों से यही ज्ञात होता है कि एक समय यह संस्था सारे भारत में फैली हुई

थी। नासिक नगर का सम्पूर्ण सार्वजनिक कार्य इसी के सदस्य चलाते थे। शिवाजी जयन्ती और गणपति उत्सव इसी की अधीनता में मनाये जाते थे। सार्वजनिक सभाओं में क्रांतिकारी सिद्धान्तों का प्रचार किया जाता था। इस प्रकार युवक लोग 'मित्रमेला' में भर्ती किये जाते थे। प्रतिसप्ताह इनकी सभा होती थी। उसमें देशभक्तों की जीवन-कथायें तथा राजनीतिक विषयों पर भाषण होते थे। विनायक इस सभा को 'राष्ट्रीय शिक्षणालय' के नाम से पुकारते थे। इस शिक्षणालय ने नासिक नगर को इस तीव्रता से परिवर्तित कर दिया था कि सरकार ने इस पर कड़ी निगरानी रखने के लिये विशेष आज्ञायें जारी की थीं। आज देश में राष्ट्रीय शिक्षणालयों का ज़ोर है। अनेकों शिक्षणालय वर्षा-ऋतु में खुम्भों की भाँति पैदा हुए और धूप की तीक्ष्ण किरणों से मुरझा कर गिर गये। परन्तु विनायक ने जिस गुप्त शिक्षणालय को खोला वह चौथाई शताब्दी तक अपना कार्य सुचारुरूप से चलाता रहा। उसकी शाखा-प्रशाखायें खुलती गईं और राष्ट्रीयता की दृष्टि से वह भारत में सर्वप्रथम विद्यापीठ था जिसमें न केवल भूतकाल में स्वतन्त्रता के लिये बलिदान हुए देशभक्तों और वीरों का इतिहास ही पढ़ाया जाता था अपितु भारत वसुंधरा की मुक्ति के लिये उनके समान देशभक्त बन कर उनकी सी वीरता दिखा कर हंसते हंसते मरना भी सिखाया जाता था।

तृतीय पर्व

यौवन काल

अंग्रेज़ी में कहावत है कि "वीरात्मायें स्वादु पदार्थों पर नहीं पलतीं प्रत्युत वे प्रति दिन अपना हृदय खाकर जीती हैं।" यह बात विनायक के विषय में सोलह आना ठीक उतरती है। १९०१ में इन्होंने अधिकारी परीक्षा पास की। राजनीतिक कार्यों मे लगे होने पर भी इन्होंने अपने अध्ययन की कभी उपेक्षा नहीं की और न अपने साथियों को ही करने दी। यही कारण है कि विनायक परीक्षा में कभी भी अनुत्तीर्ण नहीं हुए। अब इन्होंने कालेज शिक्षा के लिये नासिक छोड़कर पूना जाने का निश्चय किया। नासिक के मित्रों और प्रतिष्ठित लोगों ने विनायक को शानदार हार्दिक विदाई दी। पूना के फर्ग्यूसन कालेज में प्रविष्ट होते समय इन्होंने निश्चय किया कि अब तक हमारा कार्य नासिक ज़िले में ही सीमित था, परन्तु अब मै महाराष्ट्र के कोने कोने से आने वाले विद्यार्थियों में अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर सारे प्रान्त को कुछ ही समय में हिला दूंगा। यहाँ से स्नातक बन कर निकले हुए विद्यार्थी अपने अपने स्थानों में जाकर प्रान्त भर में क्रान्ति उत्पन्न कर देंगे। इन विचारों से विनायक ने कालेज में प्रवेश किया। इन्होंने अपने विचारों को पूर्ण करने का शक्तिभर

प्रयत्न किया। कालेज के चारों वर्षों में ये निरन्तर अपने सिद्धांतों का प्रचार करते रहे। इतिहास में इनकी स्वाभाविक रुचि थी। संसार की समग्र क्रान्तियों का इतिहास इन्होंने इसी अवस्था में पढ़ लिया था। पढ़ने का इतना अधिक शौक़ था कि इनके साथी इन्हें 'किताबी कीड़ा' कहते थे। वक्तृत्वशक्ति ऐसी प्रभावोत्पादक थी कि आगे चल कर इन पर जो मुकदमा चला उसमें इन दिनों का वर्णन करते हुए पुलिस ने कहा था 'यद्यपि उस समय ये केवल २२ वर्ष के ही थे परन्तु भाषणकला पूर्णता को प्राप्त किये हुए और स्पर्धा के योग्य थी।" इनकी यह प्रख्याति शीघ्र ही फैल गई। पूना के राजनीतिक वातावरण में प्रमुख व्यक्ति माने जाने लगे, महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नेताओं— लोकमान्य तिलक और शिवराम महादेव परांजपे से इनका वैयक्तिक सम्बन्ध हो गया। प्रति रविवार कालेज में इनकी अध्यक्षता में एक साप्ताहिक पत्र निकलने लगा। इसमें छपे लेख पूना के प्रसिद्ध पत्रों में छपते और महाराष्ट्र भर में चाव से पढ़े जाते थे। उस समय जब कि भारतीय नेता 'होमरूल आन्दोलन' चलाते हुए भी डरते थे, युवा विनायक खुले आम स्वतंत्रता और क्रान्ति का प्रचार कर रहे थे। 'इटालियन क्रान्ति' और 'क्रान्ति की सात सीढ़ियाँ' सावरकर के ये दो व्याख्यान जिन्होंने सुने हैं वे इन्हें मराठी भाषा और क्रान्तिकारी साहित्य का अनुपम रत्न समझ कर आज तक स्मरण बनाये हुए हैं। जब कालेज के आरामतलब और

फ़ैशनेबल लड़के सहभोजों और खेलों में व्यस्त होते थे उस समय सावरकर की इस भयंकर संस्था के सदस्य प्रति रविवार की संध्या को पहाड़ियों के आँचल में छिपे हुए शिवाजी के जन-शून्य मंदिर में एक-एक करके इकट्ठे होते और स्वाधीनता प्राप्ति के लिये लड़े जाने वाले स्वातन्त्र्ययुद्ध की योजनाओं पर विचार करते थे। नये सदस्य संघ में सम्मिलित किये जाते और उनमें मातृभूमि के लिये हाथ में शस्त्र लेकर, फाँसी पर झूल कर, अथवा काल कठोरियों में सड़सड़ कर मरने की भीषण प्रतिज्ञायें कराई जाती थीं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इनमें से अनेक युवकों ने अवसर आने पर इन सब विपत्तियां को प्रसन्नतापूर्वक सहन किया, न्यायालय में बड़ी वीरतापूर्वक अपने सिद्धान्तों और सधानों में आस्था प्रकट की और इससे भी बढ़कर अपने साथियों और संस्था के प्रति अन्तिम क्षण तक पूर्ण विश्वासपात्र रहे। वीर विनायक जिस प्रकार अपने साथियों में प्रमुख थे वैसे ही त्याग और साहस में भी इनका स्थान सर्वोच्च रहा।

सावरकर की इन प्रगतियों से कालेज के अधिकारी भयभीत हो गये। वे इन क्रान्तिकारी सिद्धान्तों को विद्यार्थियों के लिये हानिकारक समझने लगे। कुछ एक ने इन्हें नरम दलमें लाने का भी यत्न किया। परन्तु सब प्रयत्न विफल गये, क्योंकि सावरकर अपना सच्चा पाठ मेज़िनी, गेरिवाल्डी, शिवाजी और रामदास के जीवन से पढ़ते थे। ये और इनके साथी अपने काम में लगे

रहे। ये सब एक जैसे कपड़े पहनते, निर्धनता का जीवन बिताते, कठोर अध्ययन करते, नियमपूर्वक परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते, शारीरिक अभ्यास करते और राजनीतिक विषयों पर विचार करते हुए सदा यह सोचा करते थे कि किस प्रकार अन्य राष्ट्रों ने अपनी पराधीनता की बेड़ियां तोड़ीं और किस प्रकार भारत इनसे छुटकारा पा सकता है ? कभी कभी ये अपने दल के साथ पूना के समीपस्थ पहाड़ी दुर्गों में जाया करते, जहां हमारे पुरखाओं ने अपनी वीरता की छाप अंकित की थी। ये भ्रमण, चायपान अथवा प्रीतिभोज के लिये न किये जाते थे, अपितु, अपने पुरखाओं के साहसिक कार्य्यों को जानने के लिये किये जाते थे। कभी ये सिंहगढ़ को देखने जाते और वहाँ के विजयी सेनापति तानाजी मालसुरे की वीरता को स्मरण कर ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि हम में भी ऐसी शक्ति प्रादुर्भूत हो—जिससे हम अपनी जाति और राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकें।

१६०५-६ में स्वदेशी आन्दोलन का ज़ोर हुआ। सावरकर इसमें प्राण पन से कूद पड़े। इन्होंने पूना, नासिक तथा महाराष्ट्र के अन्य स्थानों में स्वदेशी प्रचार पर ओजस्वी भाषण दिये। ग्रीष्मावकाश आने पर ये दिन में तीन २ और चार २ भाषण देते हुए घूमने लगे। इनके भाषणों का जनता पर इतना हृदयग्राही प्रभाव पड़ता था कि सहस्रों मनुष्य मंत्रमुग्ध हुए इन्हें सुनते रहते

थे। जनता में विदेशी वस्तुओं के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिये सावरकरदल ने विदेशी वस्त्रों की एक बड़ी होली जलाने का निश्चय किया। यह विचार इतना उग्र था कि स्वयं लोकमान्य तिलक भी इसे असम्भव समझते थे, परन्तु सावरकर ने इसका उत्तरदायित्व अपने पर लिया और अनेक सभाओं में जोशीले भाषण देकर पूना की जनता को इसके लिये तय्यार कर लिया। इस विषय में बुलाई गई अन्तिम सभा में सावरकर ने कँपाने वाली आवाज़ से जनता को सम्बोधित करते हुए कहा 'विदेशी वस्त्रों को जला दो और उस प्रेम के साथ जलाओ जो प्रेम आप लोग अब तक अपने हृदय में इनकी मुलायमियत, सुन्दरता और कारीगरी के प्रति रखते रहे हैं। इन्हें जलादो और अधिकार के साथ जलादो। इसकी जलती हुई पवित्र अग्नि को साक्षी रख कर आज और अभी स्वदेशी का व्रत धारण करो।" इस आवाज़ का चारों ओर से स्वागत हुआ। जिसने जो कुछ विलायती पहना हुआ था, कुड़ता, निकर, कोट, टोपी—सब कुछ फेंक दिया। जलाने से धन का अपव्यय होता है, भीड़ में से एक आगे बढ़ कर बोला। "इस अग्नि द्वारा उत्पन्न स्वदेशभावना को आने और पाइयों में नहीं गिना जा सकता। यह विदेशी वस्त्र नहीं अपितु स्वयं विदेशी को ही हम जला रहे हैं और इसके साथ ही साथ विदेशियों से मिल कर उत्पन्न हुई राष्ट्रद्रोही भावना की भी आज हम सदा के लिये अन्त्येष्टि कर रहे हैं"—विनायक ने

साहसपूर्वक उत्तर दिया। पूना के एक बड़े मैदान में विदेशी वस्त्रों का ढेर लगाया गया, अग्नि प्रज्वलित हुई, उसकी ऊंची ऊंची लपटें उठीं और चारों ओर खड़ी जनता उससे प्रकाशित हो उठी। भारत में विदेशी वस्त्रों की यह सर्वप्रथम होली जलाई गई थी और इसका सम्पूर्ण श्रेय सावरकर को था। इसी मैदान में उस दिन लोकमान्य तिलक और श्रीयुत परांजपे ने जोशीले भाषण दिये। श्रीयुत् परांजपे ने ढेर में से एक विदेशी कोट को उठाकर कहा—"यह देखो, इसकी ये छोटी-छोटी जेबें ही भारतीय धन और मणिमुकुटों को विदेश पहुंचाती हैं। ऐ लघु जादूगरनी! जा, अब तेरा इस छोटी जेब में छिपा सौंदर्य जला कर राख किया जाता है। तूने इस राष्ट्र का रक्त चूस-चूस कर इसे रक्तहीन बना डाला है। ऐ अग्नि देवी! इसे जला दो और इसके साथ हमारे राष्ट्रीय पापों को भी भस्म कर दो।"

इस होली ने भारतीय पत्रों में बड़ी हलचल मचादी। अमृत बाजार पत्रिका, बङ्गाली, हिन्दू आदि पत्रों के कालम इसके प्रकाश से प्रकाशित हुए और टीका-टिप्पणियों का धुआं तो एक मास बाद तक उठता रहा। अधगोरे पत्रों ने इसकी खूब आलोचना की। उसे पढ़ कर कालेज के अधिकारी भयभीत हो गए। उन्होंने सरकारी कोप से बचने के लिये अपने को इस आंदोलन से बिल्कुल पृथक् कर लिया। आंदोलन के उग्र नेता सावरकर को दस रुपये अर्थ-दण्ड तथा चौबीस घंटे में कालेज आश्रम छोड़ने का

आज्ञा दी गई। सरकारी सहायता-प्राप्त भारतीय संस्था से स्वदेशी आन्दोलन में भाग लेने के कारण निकाले गये विद्यार्थियों में यही सर्वप्रथम थे। महाराष्ट्र के सम्पूर्ण राष्ट्रीय-पत्रों ने कालेज अधिकारियों की घोर निन्दा की। तिलक जी का 'केसरी' पत्र कई सप्ताह तक उसके विरुद्ध आग उगलता रहा। नासिक निवासियों ने इसके उत्तर में जानबूझ कर पूना की नक्ल में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। शहरों और क़स्बों की सभाओं में सावरकर की प्रशंसा में प्रस्ताव पास हुए और अर्थदण्ड पूरा करने के लिये चन्दे हुए। इसमें सन्देह नहीं कि यह धन राशि, दण्डराशि से बहुत बढ़ गई। शेष धन पापुलर इंडस्ट्रियल फंड (सार्वजनिक व्यवसायिक निधि) में दान दे दिया गया। सौभाग्य से मुम्बई विश्वविद्यालय ने इस घटना पर अधिक ध्यान नहीं दिया। इसलिए सावरकर को बी० ए० परीक्षा में सम्मलित होने की आज्ञा मिल गई। स्वदेशी आन्दोलन के विरोधी इस प्रतीक्षा में थे कि यदि वे परीक्षा में अनुत्तीर्ण हों तो कुछ कहने को हो जाय। परन्तु उन की आशाओं पर पानी फिर गया, क्योंकि ये कुछ ही सप्ताहों में तय्यारी करके सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हो गये। इस सफलता पर महाराष्ट्र के राष्ट्रीय नेताओं ने इन्हें बधाई दी।

चतुर्थ-पर्व

—०—

क्रांति का श्रीगणेश

१९०५ ई० सावरकर बी० ए० में उत्तीर्ण हुए। स्नातक बनते ही इन्होंने अपने द्वारा स्थापित की गई संस्थाओं को संगठित करने की ठानी। इसके लिये सब संस्थाओं के प्रतिनिधियों की एक सभा गुप्तरूप से बुलाई गई। उसमें महाराष्ट्र की विविध गुप्त संस्थाओं के लगभग दो सौ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। सबने खड़े हो कर शिवाजी, बाजीप्रभु, मेज़िनी आदि की तरह अपने देश की स्वतंत्रता के लिये लड़ने की प्रतिज्ञा की। अपनी सुन्दर वक्तृता में सावरकर ने संघ की भावी नीति पर प्रकाश डालते हुए कहा कि विद्यार्थी जीवन में हमारे कार्य्य महाराष्ट्र तक ही सीमित रहे हैं, परन्तु अब हमें अन्य प्रान्तों में भी अपने सिद्धान्त फैलाने होंगे। इस दृष्टि से इस संघ का नाम 'अभिनव भारत' रक्खा गया। इस सभा के पश्चात् सावरकर महाराष्ट्र के विविध नगरों में भाषणार्थ गये। दौरे में इनके साथ एक गायकमण्डली भी थी जो सिंहगढ़ और बाजी देशपाण्डे की स्तुति में बनाये हुये गीत गाती थी। इन गीतों का मराठों पर इतना प्रभाव पड़ा कि घबरा कर सरकार ने इन गीतों की सब प्रतियाँ ज़ब्त ही कर लीं। खोज खोज कर इनकी प्रतियां बुरी तरह नष्ट की गई। यदि किसी

के पास इन गीतों को कोई प्रति पाई जाती तो सरकार उस पर क्रांतिकारी होने का संदेह करती। यह सब कुछ होते हुए भी ये गीत आज तक जीवित हैं और एक दूसरे के पास स्मृति द्वारा चले आते हैं।

दौरे से लौट कर सावरकर मुम्बई में वकालत पढ़ने लगे। ठीक उन्हीं दिनों लन्दन में 'होमरूल सोसायटी' के जन्मदाता श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भारतीय विद्यार्थियों को विदेश के स्वतन्त्र वातावरण में राजनीति का अध्ययन करने के लिये कुछ छात्रवृत्तियां देने की घोषणा की। सावरकर ने भी इसे प्राप्त करने के लिये प्रार्थनापत्र भेजा। लोकमान्य तिलक और श्रीयुत परांजपे के प्रशंसा-पत्रों से यह काम सहज में ही पूर्ण हो गया। जाहर राज्य के कारभारी श्रीयुत चिपलूणकर की बड़ी लड़की से इनका विवाह होने के कारण आर्थिक कठिनाई भी दूर हो गई। इस समय ये सरकार की दृष्टि में खतरनाक सिद्ध हो चुके थे और इन पर पुलिस की निगरानी भी आरम्भ हो गई थी। पिछले दौरे में दिये गये भाषण क्रांतिकारी भावना से भरपूर थे। यह विशेषकर नासिक में दिया गया भाषण इतना क्रांतिकारी था कि सरकारी क्षेत्र में इनकी गिरफ्तारी की चर्चा गंभीरता से सोची जाने लगी। स्वयं सावरकर भी घंटों अपनी गिरफ्तारी की प्रतीक्षा करते रहे। परन्तु अब विदेश जाने के लिये 'शिवाजी छात्रवृत्ति' मिल जाने से सरकार ने यह विचार त्याग दिया। उसने सोचा कि इंग्लैंड

जाकर ब्रिटेन की महान् शक्ति को देख कर ये अपने राजनीतिक विचार बदल लेंगे। सरकार का यह भी ध्यान था कि सम्भवतः सावरकर बैरिस्टरी जैसे आर्थिक लाभ के पद को प्राप्त कर राजनीतिक की अपेक्षा सांसारिक अधिक हो जायेंगे। इस में सन्देह नहीं कि सरकार ने ऐसा सोचने में भारी भूल की थी, क्योंकि देश छोड़ने से पूर्व अपनी गुप्तसभा में भाषण देते हुए इन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी "अब तक मैं पूना के फर्ग्युसन कालेज में महाराष्ट्र भर के चुने हुए युवकों में अपने विचार फैलाता रहा हूँ, परन्तु अब विदेश जाकर भारत भर के धनी और योग्य विद्यार्थियों में प्रचार करने का अवसर मिलेगा। वे लोग जब बैरिस्टर डाक्टर, प्रोफेसर और सरकारी अधिकारी बनकर भारत लौटेंगे तो देश भर में क्रान्ति मचा देंगे। यह सुनहरा अवसर है। मैं इसे कभी न खोऊंगा। मैं शत्रु के गढ़ में जाकर भारतीय शक्ति का लोहा दिखाऊंगा। मैं रूसी आतंकवादियों से बाम्ब और पिस्तौल बनाना सीखूंगा। इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता शीघ्र ही हस्तगत हो जायेगी।" विदेश जाने से पूर्व इन्होंने बम्बई में भी 'अभिनव भारत' संस्था की एक शाखा खोली। विलसन, ऐल्फिंस्टन आदि कालेजों के विद्यार्थी इसमें सम्मिलित किये गये। 'विहारी' नाम से मराठी भाषा का साप्ताहिक पत्र चलाया गया। महाराष्ट्र में इसका इतना स्वागत हुआ कि थोड़े ही समय में इसकी बिक्री हज़ारों की संख्या में होने लगी।

पञ्चम पर्व

— १ —

विदेश की ओर

सब तय्यारी हो जाने पर मई १९०६ में २२ वर्ष की आयु में सावरकर ने लन्दन की ओर प्रस्थान किया। नासिक की जनता ने इन्हें सार्वजनिक विदाई दी। संसार में ऐसे लोग बिरले ही होते हैं जो मित्रों और सम्बन्धियों द्वारा इतने पूजे जाते हैं-जितना सावरकर पूजे गये। नासिक निवासियों ने दुःखित होकर कहा— "हम चाहते हैं कि आप शीघ्र ही लौट कर हम में आकर रहें।" परन्तु उन्हें क्या मालूम था कि उनकी प्रार्थना और उसकी पूर्ति के बीच में अन्दमान की कालकोठरी के भयकर बनवास के चौदह वर्ष और आकर खड़े होंगे और तब कहीं केवल कुछ घंटों के लिये इस वीर के दर्शन होंगे और फिर यह संसार से पृथक एक जेल की चहारदीवारी में तेरह लम्बे, थकाने वाले वर्षों तक नज़र-बन्द रहेगा। इस पर भी नासिक के लोग सावरकर के भक्त रहे और वे आज तक 'नासिक सावरकर का है' कहने में गर्व मानते हैं।

जहाज़ पर रहते हुए भी सावरकर खाली न बैठे। ये विदेश जा रहे भारतीय विद्यार्थियों में अपनी शिक्षायें फैलाते रहे। एक

इक्कीस वर्ष का विद्यार्थी जो उसी जहाज़ से इंग्लैंड जा रहा था और आगे चल कर उत्तरीय भारत का प्रसिद्ध बैरिस्टर बना, समुद्रीय रोग (Sea sickness) से घबरा उठा। उसने निश्चय किया कि अदन का बन्दरगाह आते ही वह स्वदेश लौट जायेगा। इस विषय में परामर्श लेने वह सावरकर के पास गया। इन्होंने पूछा "आपको समुद्रीय रोग सताता है, घर की याद अथवा दोनों?" सावरकर फिर बोले "देखो मित्र! आज हमारे राष्ट्र का कितना पतन हो गया है! आज से दो ही शताब्दी पूर्व मराठा स्त्रियों ने न केवल पश्चिम समुद्र को ही पार किया अपितु बड़े-बड़े जहाज़ी बेड़ों को भी अपने शासन में चलाया था। फिर इन अंग्रेज़ बच्चों को देखिये, जब ये क्लाईव के समय हमारे देश में आये—तो इंग्लैंड से भारत तक आने में छः मास लगते थे। इसका अभिप्राय है कि उन के सम्बन्धियों को कुशलता का समाचार एक वर्ष पश्चात् मिलता था, परन्तु वे कभी उदास न होते थे। वे हमारे अपरिचित देश में आये, करोड़ों शत्रुओं से घिरे हुए देश में वे केवल बसे ही नहीं, अपितु लड़े, विजयी हुए और विशाल साम्राज्य के स्वामी बने, और हम लोग अपने पिताओं द्वारा पहले से किये गये उत्तम प्रबन्ध और आराम से युक्त इन जहाज़ों से पुरखाओं द्वारा अच्छी प्रकार देखे भाले देशों में जाते हुए भी डरते हैं। नहीं, नहीं, आपको कदापि लौटना नहीं चाहिये। आप कहते हैं कि आपकी माता धनवान् है, इस लिये आपको बैरिस्टर

बन कर धन कमाने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु भाई ! हमारी जननियों की जननी भारतजननी इतनी धनवान नहीं है। वह चाहती है कि मेरे पुत्र विदेश जायें। वे संसार की दशा का अध्ययन करें। शत्रु की शक्ति को पहिचानें और अपनी दुर्बलता को जानें। आप को इंग्लैंड, फ्रांस और रशिया ज़रूर जाना चाहिये और वहां जाकर यह सीखना चाहिये कि क्रान्ति किस प्रकार की जाती है और स्वाधीनता किस प्रकार ली जाती है ? यदि आपको अपने लिये धन की आवश्यकता नहीं है और इसलिए आप विदेश जाना नहीं चाहते, तो कम से कम इस उच्च उद्देश्य के लिये तो आपको विदेश जाना ही होगा। आप अपने घर की बात कहते हैं, परन्तु अपने बन्धु-बान्धवों की स्मृति इतनी किसी को न सताती होगी जितनी कि मुझे सताती है। इसमें सन्देह नहीं कि हमें अपनी माता प्यारी है परन्तु हमें अपनी माताओं की माता भारतमाता उससे कहीं बढ़कर प्यारी होनी चाहिये।" ये शब्द लगभग वही हैं जो सावरकर ने उस विद्यार्थी से कहे थे। यह है वह भावना जिससे ये काम करते थे।

षष्ठ पर्व

—:०:—

ब्रिटिशराज्य की राजधानी में

इंग्लण्ड पहुंचने पर श्यामजी कृष्णावर्मा ने इनका स्वागत किया। पण्डित श्यामजी उन दिनों 'होमरूल आन्दोलन' चला रहे थे, जिसे चलाते हुए राष्ट्रीयमहासभा के अग्रगण्य नेता भी सकुचाते थे। परन्तु सावरकर के लन्दन पहुंचने के एक ही वर्ष के भीतर वातावरण इस तेज़ी से बदला कि 'होम रूल आन्दोलन' भी एक नरम आन्दोलन प्रतीत होने लगा। इन्होंने वहां 'फ्री इण्डिया सोसायटी' नामक एक संस्था खोली। हर सप्ताह इसकी सभायें हुआ करती थीं। उन में सावरकर इटली, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों की क्रांतियों पर ओजस्वी भाषण दिया करते थे। ये सभायें खुले रूप में होती थीं। इनमें प्रत्येक भारतीय सम्मिलित हो सकता था। जो लोग क्रांतिकारी सिद्धान्तों में आस्था रखते थे और कुछ कर गुज़रने की इच्छा प्रकट करते थे, उन्हें 'अभिनव भारत' संस्था में ले लिया जाता था। इस प्रकार कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, ऐडिनबरा, मानचेस्टर आदि शिक्षणालयों के भारतीय विद्यार्थी बड़ी शीघ्रता से क्रांतिकारी सिद्धान्तों के समर्थक बना लिये गये। पण्डित श्यामजी ने अपने पत्र 'इण्डियन साईकालोजिस्ट' में साम्य और रूस की गुप्त

संस्थाओं पर एक लेख लिख कर बड़ी वीरता से खुले आम क्रांतिकारी संस्था में सम्मिलित होने की घोषणा की। भारतीय नेताओं में ये उस प्रथम श्रेणी के नेता थे, जिन्होंने भारत का राजनीतिक उद्देश्य पूर्ण स्वतंत्रता घोषित किया था और जिन्हें यह विश्वास था, कि हमारा राष्ट्र तब तक स्वाधीन नहीं हो सकता जब तक कि भारतीयों के पास ब्रिटिश सरकार से अनथक लड़ाई लड़ने के लिये प्रचुरमात्रा में शस्त्र नहीं आते। इस घोषणा के पश्चात् 'होमरूल आन्दोलन' बन्द कर दिया गया और श्यामजी लन्दन का 'इंडिया हाउस' सावरकर को सौंप पेरिस चले गये। श्यामजी सावरकर को अपने पुत्र की भाँति प्रेम करते थे और ये भी उनका पितृतुल्य आदर करते थे। 'इण्डिया हाऊस' सावरकर के सुपुर्द होने पर 'अभिनव भारत' संस्था ने जो आश्चर्यजनक कार्य किये, उन्हें भारत की वर्त्तमान राजनीतिक परिस्थिति में वर्णन करना कठिन है। उनके विषय में केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि उस समय इंग्लैंड में शिक्षा पाने वाले अनुपम प्रतिभाशील विद्यार्थी अपना राजनीतिक जीवन इसी संस्था द्वारा चलाते थे। ला० हरदयाल, जो आई० सी० एस० परीक्षा पास करने इंग्लैंड गये थे, उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के लिये जीवन अर्पण करने की प्रतिज्ञा की। सरकारी और विश्वविद्यालय से प्राप्त होने वाली छात्रवृत्ति को त्याग दिया। जब तक वे जीवित रहे अपने देशानुराग के अपराध में

निर्वासित रहे। अन्तिम समय तक अपनी मातृभूमि और सम्बन्धियों का मुँह तक न देख सके और स्वातन्त्र्य-प्रेम को अपने पहलू में दबाये दूर अमेरिका में प्राण विसर्जन कर दिये। अपने जीवनकाल में उन्होंने कभी ग़दरपार्टी द्वारा, कभी अमेरिका के भारतीय विद्यार्थियों में प्रचार कर तथा कभी जर्मनी और टर्की के उच्च अधिकारियों से मिल कर अंग्रेज़ों के विरुद्ध भारतीयों को शस्त्र देने की प्रेरणा कर भारत की मुक्ति के लिये अनथक प्रयत्न किया। ये हरदयाल इसी संस्था के सदस्य थे। इनके अतिरिक्त श्रीमती सरोजिनी नायडू के भाई मि० चट्टोपाध्याय, जो यद्यपि संसार में अपनी बहिन से कम विख्यात हैं, परन्तु जिनका देशप्रेम, कष्टसहन और त्याग श्रीमती नायडू से कहीं बढ़ कर है, और जो अपनी गाढ़ देशभक्ति के कारण आज तक निर्वासित होकर रूस में जीवन बिता रहे हैं, वी० वी० एस० आयङ्गर जिसका नाम देश के लिये उठाये गये महान् कष्टों के कारण मद्रास के घर-घर में आज भी सुना जाता है, ये तथा इन जैसे अन्य अनेक व्यक्ति, जिनके नाम विशेष कारणों से यहाँ नहीं दिये जा सकते, सब सावरकर के कन्धे से कन्धा मिला कर काम करते रहे। इनके प्रयत्नों से 'अभिनव भारत' भारतीय राजनीति में ऐसी शक्तिशाली संस्था बन गई कि भारत-सरकार वर्षों तक इसे दबाने में व्यस्त रही।

इधर भारत में 'बङ्गभङ्ग आंदोलन' क्रांतिकारियों की प्रगति के कारण राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग के रूप में परिवर्तित हो गया। पञ्जाब से लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह निर्वासित किये गये। यह समाचार इंग्लैंड के भारतियों पर बिजली की भाँति गिरा। इसका विरोध करने के लिये लंदन के भारतियों ने एक सभा बुलाई। उसमें क्रांतिकारियों ने बोलते हुए स्पष्ट शब्दों मे कहा—"जब हमारे प्रारम्भिक अधिकार ही न्याय और व्यवस्था के नाम पर भयङ्करता से कुचले जारहे हैं, उस समय केवल प्रस्ताव पास करके स्वतंत्रता की आशा करना सरासर मूर्खता है।" इस युक्ति का जनता पर इतना हृदयग्राही प्रभाव पड़ा कि एक व्यक्ति ने खड़े होकर पूछा "तो फिर हम क्या करें" ? 'अभिनव भारत' का एक सदस्य खड़ा होकर बोला—"यद्यपि मैं एक ग्रेज्वेट हूँ और विश्वविद्यालय के अध्ययन में मेरा उज्ज्वल भविष्य निहित है, तो भी मैं इसे लात मार कर रूस जाऊंगा। यदि मेरी आर्थिक सहायता की गई तो मैं वहां जाकर बाम्ब बनाना सीखूंगा और भारत सरकार से उसी प्रकार निपटूंगा जैसे रूसी आतङ्कवादी ज़ारसरकार से निपटते हैं।" ज़ोर की करतलध्वनि से जनता ने इस उत्तर का स्वागत किया। पर्याप्त मात्रा में धन एकत्र हुआ। उसी सप्ताह वह मराठा युवक बाम्ब बनाना सीखने के लिये अपने एक बङ्गाली और मद्रासी मित्र के साथ रूसी क्रांतिकारियों की खोज में पैरिस पहुंचा। इससे पहले भी भारतीय

क्रांतिकारियों ने कई बार बाम्ब बनाने का प्रयत्न किया था, परन्तु इन प्रयत्नों का उन्हें भयङ्कर मूल्य चुकाना पड़ा था। किसी की आंख फूटी, किसी का हाथ कटा और कोई मूर्छित होकर ही गिर पड़ा। अब की बार कई धोखेबाज़ रूसी प्रोफ़ेसरों ने सिखाने का वचन देकर बहुत सा धन ऐंठ लिया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि इसकी विधि न जानी जा सकेगी। अन्ततः एक सच्चा व्यक्ति मिल ही गया। यह एक निर्वासित रूसी क्रांतिकारी था, जिसकी खोज में रूसी सरकार परेशान थी। इसने भारतीय क्रांतिकारियों को बाम्ब बनाने की विधि सिखाई, उन्हें प्रयोग करने का सहज उपाय बताया, सब प्रकार के बाम्ब बनाने की विधियों से युक्त पचास पृष्ठ की एक पुस्तक दी और इस सब के बदले में एक भी पैसा नहीं लिया। पुलिस विवरणों से ज्ञात होता है कि यह पुस्तक सावरकर और इनके साथियों द्वारा 'इंडिया हाउस' में साईक्लोटाईप पर छपा कर भारत में गुप्तरूप से वितीर्ण की गई। आगे खुलने वाले षड्यन्त्रों में इसकी प्रतियां भारत के दूर-दूर स्थानों में – कलकत्ता, इलाहाबाद, लाहौर और नासिक तक में खोज कर निकाली गईं। इस पुस्तक को छापने के साथ साथ 'अभिनव भारत' में बाम्ब बनाने की विधि भी सिखाई जाती थी। पुलिस विवरण के अनुसार स्वयं सावरकर भी बाम्ब बना कर अपने साथियों को इसकी क्रियात्मिक शिक्षा दिया करते थे। इसके साथ ही साथ वे भारतीय विद्यार्थियों को 'फ्री इंडिया

सोसायटी' के भवन में इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र पर सार्वजनिक व्याख्यान भी देते थे। क्रांतिकारियों ने अपने बाम्ब का प्रथम प्रयोग इंग्लैंड में ही करना चाहा, परन्तु सावरकर ने उन्हें ऐसा करने से रोका, क्योंकि इससे भारत तक यह कला पहुंचने से पूर्व ही इंग्लैंड की पुलिस के सम्मुख खुल जाती। अतः निश्चय किया गया कि तीन चार आदमी भारत भेजे जायें, वे भारत के विविध प्रान्तों में क्रांतिकारियों को यह कला सिखायें, और जब इसका पर्याप्त प्रचार हो जाये तो देश भर में एकदम आतंक फैला दिया जाये। इसके अनुसार भारत में इस विद्या के शिक्षक भेजे गए और कुछ ही समय पश्चात् बङ्गाल के श्रीमान किंग्सफोर्ड की गाड़ी पर बाम्ब फेंके जाने का समाचार लन्दन पहुंचा। सरकार घबरा उठी। भारतीय राजनीति में बाम्ब एक नवीन और विलक्षण अनुभूति के साथ प्रकट हुआ। उसका अभिप्राय 'पूर्ण स्वातंत्र्य' इन दो लघु शब्दों में निहित था। इस दिशा में क्रांतिकारियों द्वारा रचे गये षड्यंत्र इतने भयानक हैं कि उनका यहाँ वर्णन कर सकना असम्भव है। इस समय 'इण्डिया हाउस' आश्चर्यजनक कार्यों का केन्द्र बन गया था। प्रति दिन हज़ारों पोस्टर और पैम्फलेट छापे जाते और उन्हें भारतके विविध भागों में वितरणार्थ भेजा जाता था। सार्वजनिक सभायें और आत्मबलिदान भी होते रहते थे। इन सब कार्य्यों में सावरकर का हाथ सबसे अधिक रहता था। इस सब के होते हुए भी इन्होंने समय

निकाल कर दो अनुपम ग्रन्थ लिख डाले। इन में से प्रथम जोज़फ़ मेज़िनी के आत्मवृत्त का मराठी अनुवाद था। यह कार्य्य लन्दन पहुँचने के चार ही मास के भीतर करके भारत भेज दिया गया। नासिक में इसे छापा गया। जनता ने इसे इतना अपनाया कि मराठी साहित्य की बिक्री में इस पुस्तक ने अपना रिकार्ड ही स्थापित कर दिया। कई स्थानों पर धर्मग्रन्थों की भाँति पालकियों में रख कर इसके जलूस निकाले गये। हज़ारों विद्यार्थियों ने पुस्तक के प्रारम्भ में लिखी हुई भूमिका को बड़े चाव से पढ़ा। अनेकों समाचारपत्रों ने सावरकर-कृत मेज़िनी के चरित्र पर अग्रलेख लिखे। ऐसी पुस्तकों को सरकार की ओर से जो स्वाभाविक पारितोषिक मिलता है, वह इसे भी मिला। इसे ज़ब्त कर लिया गया। ढूंढ-ढूंढ कर इसकी प्रतियां नष्ट की गईं। बहुतों ने इसे बहुमूल्य रत्न की तरह छिपाया और कुछ एक ने वैदिक ऋचाओं की तरह कण्ठ कर लिया। दूसरा ग्रन्थ १८५७ के 'स्वातंत्र्य युद्ध' का इतिहास था। मेज़िनी के चरित्र द्वारा सावरकर भारतीयों को योरुपीय लड़ाई का पाठ पढ़ाना चाहते थे और 'स्वतंत्रता के इतिहास' द्वारा विषम परिस्थितियों में क्रान्ति करना सिखाना चाहते थे। यह ग्रन्थ पुराने सरकारी कागज़ों के आधार पर लिखा जा रहा था। अभी यह लिख कर पूरा भी न हुआ था कि सरकार की तिरछी दृष्टि इस पर पड़ी और ज़ब्त कर लिया गया। छपने और पूर्ण होने से पूर्व ज़ब्त होने वाला

सम्भवतः यह संसार में प्रथम ही ग्रन्थ है। कई अंगरेज़ी पत्रों ने भी इस घृणित कार्यवाही की निन्दा की। फिर भी क्रान्तिकारी तरीक़ों से यह पुस्तक छापी गई और बड़े उपायों से इसकी सैंकड़ों प्रतियां भारत भी पहुंचीं। घरों और होस्टलों में भारतीय लोग इसे दूसरी पुस्तकों में छिपा कर रखते थे। पुस्तक इतनी बढ़िया लिखी गई थी कि क्रांतिकारियों के क्रूर विरोधी वैलन्टाईन शिरोल तक ने इसके गुण गाये हैं। ऐतिहासिक गवेषणा की दृष्टि से इसका बहुत महत्व था, क्योंकि सावरकर ने इसमें १८५७ के गदर को 'सिपाही विद्रोह' न बता कर स्वातंत्र्ययुद्ध' सिद्ध किया था। पुस्तक इतनी पसन्द की गई कि आज तक अनेकों उत्साही युवक इसकी खोज में रहते हैं। एक सिख सज्जन ने दक्षिण अमेरिका में इसकी एक प्रति १३० रुपये में बिकती हुई देखी थी। पुस्तक से प्राप्त धनराशि सार्वजनिक कार्यों में व्यय की गई।

१९०७ में अंग्रेज़ लोग १८५७ के विद्रोह को जीतने की प्रसन्नता में अर्धशताब्दी मना रहे थे। इसका विरोध करने के लिये सावरकर ने १८५७ के वीरों का 'स्मृतिदिन' मनाने का निश्चय किया। ब्रिटिशराज्य की राजधानी में भारत में ब्रिटिश सत्ता के विरोधी नानासाहब, तात्यांटोपी, लक्ष्मीबाई और कुँवरसिंह को 'हुतात्मा' के रूप में पूजना असाधारण साहस का परिचायक था, परन्तु सावरकर-दल में यह साहस कूट-कूट कर भरा हुआ था। 'इण्डिया हाऊस' में 'स्वतंत्रतादिवस' बड़ी शान से

मनाया गया। प्रतिज्ञायें की गईं। उपवास रक्खे गये। शहीदों की स्मृति में हज़ारों पर्चे इंग्लैंड और भारत में वितीर्ण किये गये। उस दिन ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के भारतीय विद्यार्थी छातियों पर '१८५७ के वीरों की जय' के बिल्ले लगा कर कालेजों में गये। अँग्रेज़ प्रोफेसर आपे से बाहर होकर बिल्लों पर टूट पड़े और बोले "वे हुतात्मा न थे, वे तो हत्यारे थे।" भारतीय विद्यार्थियों ने क्षमा मांगने को कहा। न मांगने पर वे सब एक साथ कालेजों से बाहर हो गये। कुछ की छात्रवृत्तियां छीन ली गईं। कुछ ने इच्छापूर्वक त्याग दीं और कुछ एक को उनके पिताओं ने वापिस बुला लिया। इस घटना से इंग्लिश और भारत दोनों सरकारें चिन्तित हो उठीं। इंग्लैंड के पत्रों ने भारतीय विद्यार्थियों के विरुद्ध नियमित आन्दोलन आरम्भ कर दिया। 'लन्दन टाईम्स' से लेकर 'जॉनबुल' तक सभी इंग्लिश पत्रों ने स्वतंत्रता दिवस, इंडिया हाऊस और अभिनव भारत की गुप्त सभायें, क्रांतिकारी साहित्य और आँतकवादी कार्यों पर लम्बे-लम्बे कालम लिख कर सावरकर पर खुले रूप में आक्रमण किया। कई पत्रों के प्रतिनिधि इनके पास आये और प्रश्नों की झड़ी लगा दी। इन पत्रों की घृणात्मक चाल से अपनी संस्था को बचाने के लिये इन्होंने आयर्लैंड के 'सिनफिन' और दूसरे क्रांतिकारियों से सम्बन्ध स्थापित किया। अमेरिका के 'गैलिक अमेरिकन' आदि क्रान्तिकारी पत्रों में लेख लिखे। ये लेख कलकत्ते के

'युगान्तर' और मुम्बई के 'विहारी' पत्र में भी छपते थे। संसार के ब्रिटिशविरोधी समग्र राष्ट्रों को एक शृङ्खला में पिरोने के लिये मिश्र, चीन, टर्की और आयर्लैंड की क्राँतिकारी संस्थाओं से अपनी संस्था का नाता जोड़ा। ब्रिटेन द्वारा भारत के विरुद्ध किये जा रहे झूठे प्रचार का प्रतिकार करने के लिये सावरकर ने जर्मन, फ्रैंच, पोर्चुगीज़, आयरिश, चीनी और रूसी पत्रों में लेख छपाये। यह बात बिल्कुल निरपवाद है कि सावरकर की 'अभिनव भारत' ने १९०६ से १९१० तक के अल्पकाल में योरुप में जो आश्चर्य-जनक कार्य्य किये उसी के कारण योरुपीय लोगों का ध्यान भारतीय राजनीति की ओर सर्वप्रथम आकृष्ट हुआ। आगे चल कर कर्जनविल्ली को मारने वाले मदनलाल धींगरा द्वारा न्यायालय में दिये गये बयान और प्राणदण्ड की सज़ा से तथा मार्सेल्ज़ में सावरकर द्वारा किये गये समुद्रतरण ने भारतीय स्वतन्त्रता को अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा का प्रमुख विषय बना दिया। पण्डित श्यामजी, मैडम कामा, देशभक्त हरदयाल, श्रीयुत् चट्टोपाध्याय, वी० वी० ऐस० आयंगर और इन जैसे अन्य अनेक देशभक्त जो फ्राँस, जर्मनी, अमेरिका, रूस, टर्की आदि देशों में पूरे जोश के साथ काम कर रहे थे, इन्हीं के अध्यवसाय का यह फल था कि विगत महायुद्ध में भारतीय स्वाधीनता इतना प्रमुख विषय बना कि जर्मनी के राजा कैसर ने प्रेजिडैंट विल्सन की माँगों के उत्तर में

जो प्रसिद्ध पत्र लिखा था उसमें विश्वशांति के लिये भारत को स्वतन्त्र करना आवश्यक शर्त रक्खी गई थी।

'अभिनव भारत' के इन कार्य्यों से घबरा कर ब्रिटिश सरकार ने इस संस्था को कुचलने का निश्चय किया। इंग्लैंड में 'स्काटलैंड यार्ड' भारतीय विद्यार्थियों का पीछा करने लगा और भारत में साधारण सी० आई० डी० से लेकर गवर्नर तक इसके दमन में जुट गये। इसके होते हुए भी 'अभिनव भारत' द्वारा मैडम कामा की अध्यक्षता में 'वन्देमातरम्' पत्र निकलता रहा और इसके जोशीले लेखों से भरी प्रतियाँ ज़ब्ती के होते हुए भी भारतसरकार की गृध्रदृष्टि में से होकर स्कूलों, कालेजों, क्लबों और यहाँ तक कि छावनियों में भी पहुँचती रहीं। पंजाबियों में, विशेषकर सिक्खों में राष्ट्रीय भाव भरने के लिये, पंजाबी छावनियों में गुरुमुखी में लिखे हज़ारों पर्चे बाँटे गये। 'अभिनव भारत' की ओर से लन्दन में गुरु गोविन्दसिंह का जन्मदिन बड़े समारोह से मनाया गया। उसमें सावरकर के अतिरिक्त ला० लाजपतराय, विपिन-चन्द्रपाल आदि हिन्दू नेताओं ने भाषण दिये। उस दिन 'खालसा' नाम से एक पर्चा बाँटा गया। यह ज़ब्त कर लिया गया। फिर भी पंजाब के स्कूलों और कालेजों में इसकी पहुँच किसी न किसी प्रकार हो ही गई। विद्यार्थियों ने इसे इतना पसन्द किया कि कईयों ने इसे कंठ ही कर लिया। सिक्खों के इतिहास से महाराष्ट्रीय जनता को परिचित कराने के लिये सावरकर ने मराठी भाषा में 'सिक्खों का

इतिहास' लिखा। इसे भारत भेजा ही जा रहा था कि डाकघर की पेटी से सरकार ने इसे निगल लिया। इसके बाद इसके विषय में कुछ पता नहीं चला। इस समय सावरकर की लेखनी देवकी का सा दुःख सह रही थी। इनकी लेखनी से जिस-जिस ग्रन्थ ने जन्म धारण किया वह या तो छपने से पूर्व अथवा छपने के पश्चात् सैंसर की शिला पर पटक कर नष्ट कर दिया गया। इस प्रकार सावरकर सिक्खों में राष्ट्रीय भाव भर रहे थे। यद्यपि यह आन्दोलन तुरन्त फल न लाया, तथापि अमेरिका में ला० हरदयाल के 'ग़दर' पत्र द्वारा क्रान्तिकारी भावना से भरे सिक्खों ने भारत आ कर १९१४ में पंजाब में जो क्रान्ति उत्पन्न की उसमें इस आन्दोलन का पर्याप्त भाग था।

इधर भारत में सावरकर के चुने हुए मित्रों की देखरेख में चलने वाली 'अभिनव भारत' की शाखायें भीषण रूप धारण कर रही थीं। विवश होकर सरकार ने इन्हें नष्ट करने का निश्चय किया। बीसियों युवकों पर सावरकर से नियमित रूप में पिस्तौल, बाम्ब और ज़ब्त सहित्य प्राप्त करने का संदेह किया गया। ग्वालियर में 'अभिनव भारत' के दर्जनों सदस्य पकड़े गये, उनके पास शस्त्र पाये गये और धारा १२१-अ के अधीन उन्हें लम्बी-लम्बी सज़ायें दी गईं। लोकमान्य तिलक और श्रीयुत् परांजपे भी पकड़े गये। इससे आन्दोलन दबने की अपेक्षा और भड़क उठा। मुम्बई और नासिक में विरोधस्वरूप भयंकर लूटमार हुई। इसके अपराध में

सावरकर के बड़े भाई गणेश को 'दंगइयों का नेता' कह-कर छः मास का कठोर कारावास दिया गया। ब्रिटिशविरोधी आन्दोलन ने और भी ज़ोर पकड़ा। परिणामतः गणेश को दुबारा पकड़ा गया। अबकी बार १२१ अ का अपराध लगाया गया। गणेश ने जेल से छूटते ही कविताओं का एक संग्रह छापा। इसमें विविध देशों के स्वातंत्र्ययुद्धों का वर्णन था। इसे ब्रिटिशविरोधी समझा गया। साथ ही घर की खोज करने पर क्रान्तिकारी साहित्य तथा बाम्ब का मसाला पाया गया। इस अपराध में इन्हें आजन्म कारावास दिया गया। 'आजन्म कारावास' ये शब्द उस समय भारतीय राजनीति में बिल्कुल नवीन थे। राजनीतिक हलचलों के कारण जिन भारतीय युवकों को आजन्म कारावास दिया गया था उन प्रथम आधे दर्जन युवकों में से गणेश एक थे। इस दण्ड का अभिप्राय था कि अब राजनीति कोई खेल नहीं है। उस समय और आज भी कुछ वर्ष का कठोर कारावास पाना ही देशभक्ति का सर्वोत्तम प्रमाण-पत्र समझा जाता है, फिर आजन्म क़ैद का तो कहना ही क्या? यह सब कार्यवाही सावरकरदल को भयभीत बनाने के लिये की गई थी। परन्तु ये लोग अपने कार्य को पहिले से भी अधिक उत्साह से करने लगे। इसी बीच सावरकर बैरिस्टरी के अन्तिम वर्ष में उत्तीर्ण हुए। अब सनद देने का समय आया। इसे रोकने के लिये लार्ड मार्ले तथा अन्य ऐंग्लो-इंडियन्स ने इन पर राजद्रोह का अभियोग चलाया।

भारतसरकार ने अभियोग प्रमाणित करने के लिये कागज़ात से पूरी सहायता पहुँचाई। सावरकर ने अपने पर लगाये गये सभी आक्षेपों का उत्तर दिया। न्यायालय ने निर्णय किया कि सनद तो दे दी जाये परन्तु इनसे आगे को राजद्रोह न करने का वचन ले लिया जाये। सावरकर ने उत्तर दिया "यह कभी नहीं हो सकता, क्योंकि यदि मैं कभी राजद्रोह करूं तो सरकार मुझ पर अभियोग चला कर दण्ड दे सकती है। फिर आश्वासन देने की आवश्यकता ही क्या है? इसके अतिरिक्त राजद्रोह की तो व्याख्या भी अभी पूरी नहीं हुई है, क्योंकि सरकारी अधिकारी 'वन्देमातरम्' बोलना भी राजद्रोह समझते हैं।' अन्त में निर्णय हुआ कि इन्हें सुधरने का अवसर दिया जाये। यदि ये अपनी क्रांतिकारी चालें बन्द कर दें तो इन्हें सनद दे दी जाये अन्यथा ज़ब्त कर ली जाये। यही सोच कर सदस्यों की सूचि में से इनका नाम नहीं काटा गया। परन्तु सावरकर ने न तो आश्वासन ही दिया और न अपनी चालों से ही बाज़ आये। परिणामतः सनद जब्त कर ली गई। बैरिस्टरी जैसे पद पर इस प्रकार लात मारने वाले पहले बैरिस्टर सावरकर ही हैं।

इसके बाद एक प्रातःकाल लन्दन नगर कर्ज़नविल्ली और लालकाका की हत्या के भीषण समाचार से थर्रा उठा। अंग्रेज़ों ने १८५७ के विद्रोह के बाद से भारतीय विषयों में इतनी दिलचस्पी कभी न ली थी, जितनी कि उस दिन ली। सड़कों, चौराहों,

स्टेशनों, होटलों, ट्रामों और रेलगाड़ियों मे अंग्रेज़ों के झुण्ड के झुण्ड इस बात पर चर्चा करते हुए पाये गये कि भारतीयों को ऐसा क्या दुःख था कि उन्होंने रूसी हथियार अपनाये। सायंकाल निकलने वाले पत्रों में ढींग्रा नामक एक पंजाबी युवक का, जो पहले 'अभिनव भारत' संस्था का प्रमुख सदस्य था और अभी अभी ऐंग्लो-इंडियन्स की 'जली क्लब' मे सम्मिलित हुआ था, इस घटना से सम्बन्ध बताया गया। शीघ्र ही यह समाचार योरुप भर के देशों में फैल गया। एक सप्ताह तक योरुप के सभी पत्र इस घटना के विषय मे और भारतीय क्रांतिकारियों के विषय में नवीन समाचार जानने को उत्सुक रहे। इस घटना से अंग्रेज़ों की अपेक्षा भारतीय अधिक दुःखी हुए। लन्दन में रहने वाले भारतीयों ने जांच होने से पूर्व ही ढींग्रा की निन्दा करने के लिये एक सभा बुलाई। ढींग्रा के पित' ने कर्जनविल्ली के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए एक तार लन्दन भेजा कि मुझे ऐसे नीच पुत्र का पिता कहलाने में लज्जा आती है। अंगरेज़, ऐंग्लो-इंडियन और भारतीय सभी सभा में गये। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, विपिनचन्द्रपाल, आगाखां भावनागरी आदि नेताओं ने ढींग्रा के दुष्कृत्य की, हत्या की, और पागलपन की खूब बुराई की। पाल बाबू का भाषण सब से ज़ोरदार था। भाषणों के बाद एक प्रस्ताव का समर्थन हुआ, परन्तु मतविभाजन हुए बिना ही भावनागरी और आग़ाख़ाँ चिल्ला उठे कि "प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया है।" सभा में कुछ

क्रांतिकारी भी आये थे। वे इस अन्याय को न देख सके। 'मांचेस्टर गार्डियन' के संवाददाता ने लिखा है कि इतने में सभास्थल से "नहीं, नहीं, सर्वसम्मति से नहीं" की ज़ोरदार आवाज़ आई। सभापति ने आवाज़ को दबाने के लिये फिर कहा "नहीं, प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ है।" "नहीं, नहीं" की ध्वनि फिर ज़ोर से उठी। भावनागरी और आग़ाखाँ आपे से बाहर होकर कहने लगे "कौन नहीं कहता है, कौन है वह? उसे पकड़ो, नीचे बिठादो।" किसी ने कहा "मैं कहता हूँ।" ऐंग्लो-इण्डियन, भावनागरी और आग़ाखाँ खिज कर कहने लगे "कहाँ है वह, कहाँ है? उसे लात मार कर निकाल दो।" भीड़ में से एक ने शांति और गम्भीरता से उत्तर दिया "मैं हूँ वह, मैं यहां खड़ा हूँ, मेरा नाम सावरकर है। मैं इस प्रस्ताव के विरुद्ध हूँ।" लोगों ने पीछे मुड़ कर देखा कि एक दुबला-पतला युवक खड़ा है। यौवन और बुद्धिमत्ता उसके चेहरे पर टपक रही है। सभा में गड़बड़ मच गई। लोग चिल्लाने लगे "मारो उसे, मारो।" परन्तु सावरकर का नाम सुन कर सभी कांपने लगे। इतने ही में एक यूरेशियन आगे बढ़ा। उसने सावरकर के मुख पर ज़ोर का आघात किया। चश्मा टूट गया। आँख पर घाव हो गया। रक्तधारा बह उठी। मुंह और कपड़े लहू से सन गये। फिर भी अधिक शांति और दृढ़ता के साथ अपना दायां हाथ उठा कर सावरकर बोले "इसके होते हुए भी मेरी सम्मति इस प्रस्ताव के

विरुद्ध ही है।" अपने नेता को रक्तसिंचित देख कर क्राँतिकारियों से न रहा गया। उनमें से एक पिस्तौल लेकर आगे बढ़ा, परन्तु सावरकर ने आँख के इशारे से उसे रोका। एक दूसरे क्राँतिकारी ने अपने हाथ की लाठी यूरेशियन के सिर पर दे मारी। सिर फट गया और उसके कपड़े खून से भर गये। सभा में हाहाकार मच गया। लोगों ने सोचा यहाँ भी कोई हत्याकाण्ड हो गया है। कुछ एक डर के मारे कुर्सियों के नीचे छिप गये, शेष भाग खड़े हुए। दरवाजे पर इतना धक्कमधक्का हुआ कि अंग्रेज स्त्रियाँ दब कर चिल्लाने लगीं। पुलिस आ गई और भावनागरा के कहने से उसने सावरकर को पकड़ लिया। इस पर सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी विरोधस्वरूप सभा से उठ कर चले गये और जाते हुए कहते गये "सावरकर को मार कर अत्याचार किया गया है। उन्हें विरोध में मत प्रकट करने का पूर्ण अधिकार था।" सभा भंग हो गई। निन्दा का प्रस्ताव धरा रह गया। उस दिन क्राँतिकारियों की विजय हुई। कुछ घण्टे बाद सावरकर छोड़ दिये गए क्योंकि पुलिस के पास अभियोग चलाने योग्य कोई प्रमाण ही न था। छोड़ते समय पुलिस ने सावरकर से कहा कि यदि आप कहें तो उस यूरेशियन पर मामला चलाया जाये। परन्तु उन्होंने हंस कर उत्तर दिया "उसे अपनी करनी का फल मिल गया है और मैं समझता हूँ कि वह पर्याप्त है।" पुलिस से छूट कर दूसरे ही दिन सावरकर ने 'लन्दन टाईम्स' में अपने

विरोध का स्पष्टीकरण छपवाया। उसमें इन्होंने लिखा था कि अभी अभियुक्त की अदालत में जांच नहीं हुई है। इस लिए अभी से उसका उद्देश्य नहीं जाना जा सकता। अभी तो यह भी प्रमाणित नहीं हुआ कि अपराधी ढींग्रा ही है। ऐसी अवस्था में उसके विरुद्ध प्रस्ताव पास करना न्यायालय का अपमान करना है और ढींग्रा को न्याय से वंचित रखना है। इस लिए मैं संशोधन उपस्थित करने वाला था, परन्तु उसकी आज्ञा न मिलने पर मैंने विरोध में अपनी सम्मति प्रकट की। सभापति के लिए ठीक मार्ग यही था कि वे इसे एक के विरोध से स्वीकृत घोषित करते, परन्तु ऐसा न करके उन्होंने मुझ पर अपना मत लादना चाहा और विरोध करने का अन्यायपूर्ण प्रहार किया। मुझे आश्चर्य है कि हिन्दुस्तानियों को ऐसी क्या जल्दी पड़ी थी, जब कि अंग्रेज़ लोग, जिनका कर्जनविल्ली स्वयं एक अंग था, न्यायालय द्वारा जांच होने से पूर्व ढींग्रा-कृत्य की निंदा करने को तय्यार न थे। इस पत्र के छपते ही कई समाचार पत्रों ने सम्पादकीय टिप्पणियां लिखीं और बहुतों ने इसका समर्थन किया। इसे देख वह यूरेशियन चुप न रह सका और अपने को अंग्रेज़ों का प्यारा बनाने के लिये उसने 'टाइम्स' में "एक असली ब्रिटिश घूंसा" शीर्षक से पत्र छपवाया। दूसरे ही दिन के 'टाईम्स' में ब्रिटिश घूंसे को तोड़ने वाली "एक सीधी हिन्दुस्तानी लाठी" शीर्षक से इसका करारा उत्तर छपा।

गिरफ्तारी के समय ढींग्रा की जेब में एक पत्र था जिस में हत्या करने का रहस्य घोषित किया गया था। बार-बार प्रेरणा करने पर भी पुलिस ने इसे छापने से इन्कार किया। परन्तु वह रहस्यमय तरीके से ढूंढा गया और छाप कर इंगलैंड, अमेरिका और भारत में बांटा गया। 'अभिनव भारत' के पास यह पत्र किस प्रकार आया, यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे अंग्रेज़ सरकार आज तक नहीं जान सकी। स्काटलैंडयार्ड भी इसका कुछ पता न लगा सका। उन दिनों लन्दन में यह अफ़वाह बहुत गर्म थी, कि यह पत्र सावरकर का लिखा हुआ है। कुछ भी हो, पत्र बहुत ही सुन्दर लिखा गया था। कुछ ही वर्ष हुए कि लायड-जार्ज और मि॰ चर्चिल ने इस पत्र के विषय में कहा था कि यह संसार के राष्ट्रीय साहित्य का सर्वोत्तम भाग है। कई ज़िम्मेदार अंग्रेज़ों ने ढींगरा पर दबाव डाल कर यह बयान देने की प्रेरणा की कि उसने यह काम पागलपन में किया है। परन्तु उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और न्यायालय में दिए गए अपने ज़ोरदार भाषण में स्पष्ट शब्दों में घोषित किया "मैंने यह हत्या अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने के लिये शस्त्र रखने के अपराध में फाँसी और देशनिकाला दिये गये युवकों के प्रतिकार में की है।" उसने जजों से दृढ़तापूर्वक कहा "मैं चाहता हूँ कि मुझे इस हत्या के अपराध में फाँसी दी जाये।" जब उसे फाँसी की सजा सुना दी गई तो उसने जजों को धन्यवाद देते हुए कहा

"एक हिन्दू के नाते मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मैं फिर से हिन्दूस्थान में पैदा होऊँ और उसी के लिये मरूँ। मैं बार-बार जन्म धारण कर इसी प्रकार प्राण देता रहूँ जब तक कि मेरी प्यारी जन्मभूमि बन्धन-मुक्त न हो जाये।" ढींग्रा फाँसी पर लटकाया गया। उस दिन इंगलैंड के भारतीय विद्यार्थियों ने उपवास रक्खा। वे जेल के बाहर इकट्ठे हुए और उसका हिन्दू-विधि से संस्कार करने की माँग की। परन्तु यह माँग अस्वीकार कर दी गई और उसे जेल में ही दफ़ना दिया गया।

इस घटना के पश्चात लन्दन की खुफ़िया पुलिस भारतीय विद्यार्थियों के पीछे छाया के समान रहने लगी। इंडिया हाउस पर खुफ़िया पुलिस का सख्त पहरा था। इस पर भी सावरकर दल अपना कार्य्य पहले की भाँति करता रहा। केवल काम ही नहीं होता रहा, क्रांतिकारी युवकों ने खुफिया विभाग को तंग भी बहुत किया। कुछ भारतीय युवक लन्दन के खुफ़िया विभाग में भर्ती हो गये। वे पुलिस को उतनी ही बात बताते थे जितनी कि सावरकर बताने को कहते थे और कभी-कभी तो वे पुलिस को धोखे में डालने योग्य समाचार भी दे देते थे। ये लोग अपना मासिक वेतन 'अभिनव भारत' संस्था में जमा करा देते थे। ऐसे ही लोगों में से एक मद्रासी सज्जन थे। कुछ समय पश्चात सरकार को इनका रहस्य खुल गया और गिरफ्तारी के लिये वारण्ट जारी किया। परन्तु ज्यों ही उन्हें मालूम पड़ा, वे लन्दन छोड़ कर पेरिस

चले गये। इधर पुलिस की सरगर्मियों के कारण इंग्लैंड के भारतीय विद्यार्थियों की दशा बहुत बुरी हो रही थी। उन्हें रहने को कोई स्थान न देता था, होटल और रैस्टोरैंट में उन्हें घुसना न मिलता था और बातचीत करते हुए भी लोग उनसे डरते थे। खुफ़िया पुलिस का जाल इस प्रकार बिछा दिया गया कि अब 'इंडिया हाऊस' में गुप्त सभायें करना असम्भव हो गया। अन्तत: 'इंडिया हाऊस' बन्द कर दिया गया। प्रत्येक भारतीय युवक का घर ही 'इंडिया हाऊस' बन गया। सब लोग प्रतिदिन रात को एक स्थान पर इकट्ठे होते और अपनी राजनीतिक प्रतिज्ञाओं को दोहराते थे। वे ज़ोर-ज़ोर से कहते थे "भारत स्वतंत्र होकर रहेगा, भारत अवश्य एक राष्ट्र बनेगा। भारत अवश्य लोकसत्तात्मिक होगा। भारत में एक भाषा और एक लिपि होगी। लिपि देवनागरी और भाषा हिन्दी होगी। लोकसत्ता में चाहे राजा रहे अथवा जनता द्वारा चुना हुआ राष्ट्रपति, परन्तु वह तभी तक सत्ताधारी रह सकेगा जब तक वह भारतीय जनता द्वारा निर्वाचित होगा।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि क्रांतिकारी लोग केवल ध्वंसात्मक कार्य ही न करते थे, अपितु वे भारत के भावी शासनविधान की रूपरेखा भी बना रहे थे। सावरकर अपने साथियों से बहुधा कहा करते थे कि इससे पूर्व कि तुम किसी वस्तु का नाश करो यह सोच लेना आवश्यक है कि उसके स्थान पर क्या और कैसे बनाओगे।

जब लन्दन में ये घटनायें हो रहीं थीं उस समय भारतसरकार सावरकर के सम्बन्धियों और मित्रों पर भयंकर सख्तियां कर रही थी। उनके श्वसुर, जो जाहर राज्य के कारभारी थे, अपने पद से हटा दिये गये। कुछ सम्बन्धियों और मित्रों पर केवल सावरकर से सम्बन्ध होने के कारण ही अभियोग चलाये गये, उनकी नौकरियां छीन ली गईं और सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई। बड़े भाई को आजन्म कारावास पहले ही मिल चुका था। अहमदाबाद में लार्ड मिण्टो पर बॉम्ब फैंकने के अपराध में इनके छोटे भाई नारायण भी पकड़े गये। उनकी आयु उस समय केवल सत्रह वर्ष थी। सावरकर स्वयं देश न आ सकते थे क्योंकि इन्हें निर्वासन की आज्ञा मिल चुकी थी। अब घर पर केवल बड़े भाई की पत्नी ही शेष थी। इधर घर की यह दशा थी, उधर लन्दन में सावरकर की दशा इससे भी बुरी थी। वे किसी से बात करते तो पुलिस के डर से वह मुंह फेर लेता। कहीं ठहरने के लिये स्थान ढूंढते तो खुफ़िया पुलिस के भय से वह देने को मना कर देता। एक दिन जब ये दो स्थानों से निकाले जाकर तीसरा स्थान लेकर आराम कुर्सी पर लेटे ही थे तो होटल का स्वामी आकर कहने लगा "महाशय ! मुझे दुःख है कि मैं आपको यहां नहीं रख सकता। आपको यह कमरा छोड़ देना चाहिये। पुलिस मेरे पीछे पड़ी हुई है। मेरा धन्धा डूब जायेगा। आप कृपा कर कहीं और चले जाइये।" अब कोई और चारा न था। आधी रात के समय

सामान लेकर स्थान की खोज में बाहर निकलना पड़ा। संसार के सब से बड़े नगर में सावरकर को रहने को स्थान न था। वे धन खर्चने को तय्यार थे, परन्तु कोई स्थान देने वाला न था। तब क्या किया जाये? क्या लन्दन छोड़ दिया जाये? फिर लन्दन छोड़ कर जायें कहां? भारत के द्वार यहां की सरकार ने पहले ही बन्द कर दिये थे। यह उन सैंकड़ों कठिनाइयों में से एक का नमूना है जो उन दिनों भारतीयों को इंग्लैंड में देशभक्ति के भीषण अपराध में उठानी पड़ती थीं। ऐसी दशा में सावरकर लन्दन छोड़ कर ब्रिटेन चले गये। वहां एक दिन समुद्रतट पर बैठे हुए सावरकर को अपने घर का याद आई और बन्धुबान्धवों के दुःख को स्मरण कर बोल उठे "ऐ समुद्रीय लहरो! मुझे ले चलो, मुझे ले चलो, मुझे अपने देश की ओर ले चलो। मैं देश जाने को तड़प रहा हूँ। दया कर मुझे उधर ले चलो।"

...म पर्व

—:o:—

पेरिस में

राजनीतिक लगन और चिन्ताओं से सावरकर का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता गया। पहले बुखार हुआ और फिर वह 'ऑंका-ईटस' में परिणत हो गया। इनके मित्रों ने माता से भी बढ़कर इनकी परिचर्या की। चिकित्सकों के परामर्श से इन्हें वेल्स के 'आरोग्य भवन' में रक्खा गया। रोगशय्या पर पड़े हुए भी ये क्रांतिकारी पत्रों में लेख लिखते रहे। उन दिनों 'तलवार' नामक पत्र में इन्होंने जो लेख लिखा था वह क्रांतिकारियों की आन्तरिक भावनाओं का परिचायक है। वह इस प्रकार प्रारम्भ होता था—"हमें गुप्त संस्थाओं और गुप्त तरीक़ों से लड़ने में कोई विशेष आनन्द नहीं आता। परन्तु जहां सचाई को कहना दमन से दबा दिया जाता है वहां गुप्त संस्थाओं का होना अनिवार्य्य हो जाता है। इसी लिये अत्याचार को क्रांति से दबाना भी न्याय होता है। जहां राष्ट्र के राजनीतिक विकास को आतंक से कुचल दिया जाता है वहां सत्य को फिर से उसके उच्चासन पर बिठाने के लिये विद्रोह ही एकमात्र प्रभावोत्पादक साधन होता है। जिन देशों के लोग वैध मार्ग से राज्य में अपना मत स्थापित कर सकते हैं,

उदाहरणार्थ इंग्लैंड, फ्रांस और अमेरिका में, वहां गुप्त संस्थाओं द्वारा आन्दोलन चलाना सुतरां निन्दनीय है। हमारे देश में भी जिस दिन वैध उपायों द्वारा अपने उद्देश्य को पा सकना सम्भव होगा, उस दिन हम भी इस गुप्त और आतंकवादी मार्ग से मुंह फेर लेंगे। भारत को स्वतंत्र होना ही होगा। हम हृदय से चाहते हैं कि यह उद्देश्य शांतिपूर्ण और केवल शांतिपूर्ण मार्ग से ही प्राप्त हो। परन्तु आपकी हिंसा ने इसे असम्भव बना दिया है। आप का शासन बन्दूकों से होता है। ऐसी दशा में उस देश में जहां कोई विधान ही नहीं है, वैधानिक आन्दोलन की बात करना ही मूर्खता है। परन्तु जहां वैधानिक मार्ग खुले हों वहां क्रांति की बात सोचना मूर्खता ही नहीं, भयंकर अपराध भी है। क्योंकि आप बन्दूक रखने नहीं देते, इस लिये हम पिस्तौल उठाते हैं। क्योंकि आप प्रकाश में इकट्ठा होने से रोकते हैं, इस लिये हम अपनी माता को बन्धनमुक्त करने के उपायों पर विचार करने के लिये अन्धेरे में इकट्ठे होते हैं।" ये भाव उस परिस्थिति का स्पष्ट वर्णन कर रहे हैं जिस में क्रांतिकारियों ने इस मार्ग को चुना था।

सावरकर को वेल्स गये अभी एक पक्ष भी न बीता था कि एक शाम इन्हों ने पत्र में एक आश्चर्यजनक समाचार पढ़ा कि अनन्त कान्हेरे नाम के चितपावन ब्राह्मण ने गणेश सावरकर को दिये गये आजन्म कारावास का बदला लेने के लिये नासिक के

कलेक्टर को मार डाला है। दूसरे दिन उसी 'आरोग्यभवन' में ठहरे हुए एक सम्पादक महाशय ने सावरकर से कहा कि नासिक में आप के छोटे भाई नारायण तथा अन्य अनेक मित्र हत्या, षड्यंत्र और राजद्रोह के अपराध में पकड़े गये हैं। नारायण अभी अभी मिंटोबॉम्बकेस से प्रमाण न मिलने के कारण छोड़े गये थे। अभी एक दिन पूरा भी न गुज़रा था कि इस हत्याकेस में दुबारा पकड़े गये। इस हत्या से अंग्रेज़ों का कोप भड़क उठा।

अंग्रेज़ी पत्र खुल्लमखुल्ला इन हत्याओं का दोष सावरकर पर मढ़ने लगे और इन्हें गिरफ्तार करने पर ज़ोर देने लगे। अंग्रेज़ों की यह मनोदशा देख कर इनके मित्रों ने इन्हें इंग्लैंड छोड़ फ्रांस जाने की अनुमति दी, परन्तु सावरकर ने हाथ में लिये हुए काम को छोड़ कर फ्रांस जाना अनुचित समझा। इस पर 'अभिनव भारत' की कार्यकारिणी ने सावरकर से आग्रह किया कि आपका स्वास्थ्य और जेल से बाहर रहना हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। अत: आप हमारे द्वारा भेजे हुए व्यक्ति के साथ तुरन्त फ्रांस चले जायें। पैरिस से भी इसी आशय के कई पत्र आये। अन्तत: सावरकर फ्रांस की ओर चल पड़े। लन्दन में मित्रों ने शानदार स्वागत किया। एक गुप्त सभा बुलाई गई। लन्दन में 'अभिनव भारत' की यह अन्तिम सभा थी जिसमें सावरकर सम्मिलित हुए थे। बड़े दु:खभरे हृदय से अपने लन्दन के मित्रों को छोड़ ये पैरिस पहुंचे। वहां भारतीयों ने प्रेम से इनका स्वागत किया। पैरिस में

वे मेडम कामा के यहां ठहरे। इन्होंने माता के समान सावरकर की सेवा की, जिस से ये शीघ्र ही रोगमुक्त हो गये। श्रीमती 'कामा' एक पारसी देवी थी। ये पैरिस से 'बन्देमातरम' नामक एक पत्र निकालती थीं। अमेरिका, जर्मनी आदि देशों में ईसाई पादरियों द्वारा भारत के विषय में फैलाई जाती हुई झूठी बातों का निराकरण भी ये किया करती थीं। दादा भाई नारौजी को पार्लिआमैंट का सदस्य चुनाने के लिये इन्होंने अनथक प्रयत्न किया था। बाद में ये 'होमरूल आन्दोलन' में सम्मिलित हुईं। कुछ दिन बाद इन्हें इस आन्दोलन की व्यर्थता पता लगी और 'अभिनव भारत' की सदस्य बन गईं। एक बार ये जर्मनी में अखिल जर्मन सोशलिस्ट कान्फ्रैंस में सम्मिलित हुईं। सावरकर द्वारा निर्मित भारतीय झण्डे को ये अपने साथ लेती गईं। जब ये बोलने खड़ी हुईं तो अपनी जेब से उस ध्वज को निकाल कर बोलीं–"यह है भारतीय राष्ट्र का स्वतंत्र झण्डा। यह देखिये. यह फहरा रहा है। भारतीय देशभक्तों के रक्त से यह पवित्र हो चुका है। सभ्यगण! मैं आप से अनुरोध करती हूं कि आप लोग खड़े होकर भारत की इस स्वतंत्र पताका का अभिवादन करें।" श्रीमती कामा का भाषण असर कर गया और सभी ने टोपी उतार कर भारतीय ध्वज का आदर किया। यह प्रथम ही अवसर था जब किसी भारतीय के अपने राष्ट्र की स्वतन्त्र पताका फहराने का साहस किया था।

नासिक हत्याकाण्ड के समाचार शीघ्र ही पैरिस पहुंचने लगे। अभियुक्तों ने न्यायालय में पुलिस द्वारा किये गये अत्याचारों की रोमांचकारी कथायें वर्णन कीं। अपने मित्रों और सम्बन्धियों पर होने वाले इन कष्टों को सुन कर सावरकर सोचने लगे "क्या यह मनुष्यता है कि मेरे साथी जो मेरे ही कारण इस मार्ग में आये थे, उन्हें आज आग में धकेल कर स्वयं फ्रांस की इस सुन्दर राजधानी में मौज करूं? जब मैं ही सब से पहले आग खड़ा हुआ हूँ तो अपने साथियों को मैदान में तोपें गाड़ कर शत्रु से मोर्चा लेने की आज्ञा देनेका ही मुझे क्या अधिकार है? पण्डित श्यामजी कहते हैं कि मैं सेनापति हूँ, इस लिये मुझे सेना के साथ न चल कर पीछे रहना चाहिये। परन्तु सेनापति भी तो सेना की अगली टुकड़ी में लड़ कर वीरता दिखाने से ही बनता है। यदि संकटों से बचने वाला ही सेनापति होने लगा तो प्रत्येक अपने को सेनापति समझ कर घर बैठा रहेगा। तब मैदान में लड़ने कौन जायेगा? फिर कायरों और वीरों में भेद ही क्या रहेगा? कायरों को अपनी कायरता छिपाने का अच्छा साधन मिल जायेगा।" इस दुविधा में कई दिन बीत गये। एक दिन इन्होंने अपने साथियों से कहा "यदि मेरा कोई वारण्ट है और भारत सरकार मुझे क़ैद करना चाहती है, तो यह काम इंग्लैंड में नहीं हो सकता। अंग्रेज़ लोग संसार में स्वतन्त्रता के प्रेमी प्रसिद्ध हैं। रूसी, फ्रांसीसी और

चीनी क्रांतिकारी अब तक इंग्लैंड में शरण पाते रहे हैं। नैपोलियन तृतीय के हत्यारे ओरसिनी ने भी इंग्लैंड में ही आश्रय पाया था। अंग्रेज लेखक आज तक बड़े गर्व से लिखते हैं कि दासों ने ज्योंही ब्रिटिश सागर का स्पर्श किया, उनकी दासता की शृङ्खलायें टूक-टूक हो गईं। यदि मुझे दण्ड देने के लिये अंग्रेज अपनी इस प्रतिष्ठा पर कलङ्क भी लगायेंगे तो भी मेरी गिरफ्तारी भारतीय स्वतन्त्रता के प्रश्न को संसारव्यापी बना देगी।" इस प्रकार सोचते हुए सावरकर वायुसेवन को निकल गये। घूमते-घूमते इन्होंने जेब से एक मराठी पत्र निकाला। इसमें कर्वे और उनके साथियों को प्राणदण्ड का समाचार देख कर आवक् रह गये। ये आप ही आप कहने लगे "एक वे हैं जो मेरे उपदेश से प्रेरित होकर, मेरे शब्दों के लिये फाँसी पर झूलने को उद्यत हैं और एक मैं हूँ जो यहाँ नदी पर पक्षियों और फूलों की सुन्दरता में विहार कर रहा हूँ। एक वे हैं जो मेरे द्वारा कराई प्रतिज्ञाओं के कारण बेड़ियाँ और हथकड़ियाँ पहने, भूखे और प्यासे कारावास की अंधेरी कोठरियों में पड़े सड़ रहे हैं और एक मैं हूँ जो नदी तट पर आनन्द से घूम रहा हूँ। नहीं, मुझे कुछ करना ही होगा। यदि भारत जाना मना है तो मैं इंग्लैंड जाऊँगा। मुझे वे सब कष्ट सहने होंगे जो मेरे साथी सह रहे हैं। मुझे संसार को बताना होगा कि मैं केवल त्याग ही नहीं कर सकता, अपितु विपत्तियाँ भी झेल सकता हूँ।

यदि मैं पकड़ा गया तो और भी अच्छा होगा। भीषण से भीषण अत्याचारों में स्थिर रह कर अपनी मातृभूमि के प्रति दृढ़ प्रेम की छाप शत्रु के हृदय पर बिठा सकूंगा। यदि मैं छूट गया तो शत्रु की दूषित मनोवृत्ति संसार को विदित हो जायेगी। यदि मेरे प्राण चले गये तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी। इस पुण्य भूमि के लिये मृत्यु आने तक कार्य करते रहने की मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायेगी। इस प्रकार देश के लिये मरने वाले हुतात्माओं की श्रेणी में मेरी गणना हो सकेगी। मैं अवश्य जाऊँगा। अपने को संकट में डालूंगा। विपत्तियों को हँसी-हँसी सहूँगा। तभी मैं दूसरों को इस मार्ग पर चलाने का अधिकारी होऊँगा।" इन विचारों में अपने को भूले हुए ये जैसे तैसे घर पहुँचे। वहाँ जाकर लन्दन जाने का निश्चय कर लिया। लन्दन जाने वाले जहाज पर सावरकर आरूढ़ हुए। पेरिस के सभी भारतीय इन्हें पहुँचाने आये। विदा होते हुए सावरकर बोले "अब तक मैंने शक्तिभर कार्य्य किया है किन्तु अब मैं भक्तिभर कष्ट सहने जा रहा हूँ। देश की वर्त्तमान परिस्थिति में कष्ट सहना केवल कार्य्य करने से अधिक श्रेयस्कर है।"

अष्टम पर्व

—0—

लन्दन में गिरफ्तारी

जहाज फ्रांस से इंग्लैंड पहुँचा। सावरकर लन्दन जाने वाली रेल पर सवार हुए। यद्यपि ये गिरफ्तारी की आशंका कर रहे थे, परन्तु इन्हें यह आशा न थी कि यह काम इतना शीघ्र हो जायेगा। इनके डिब्बे में सशस्त्र पुलिस का पहरा था। रेल लन्दन के विक्टोरिया स्टेशन में घुसी। इनका डिब्बा आते ही सैनिक आज्ञा हुई "बस, गाड़ी यहीं रोकी जाये।" प्लेटफार्म पर उतरते ही सादे कपड़े पहने हुए बीसियों खुफ़िया चिल्ला उठे "सावरकर यहीं है, यहीं है, यह खड़ा है।" इन्हें रोक लिया गया। वारण्ट पढ़ कर सुनाया गया और इन्हें बन्दी बना लिया गया। यह १३ मार्च १६१० का दिन था। अगले ही दिन संसार के समस्त समाचार पत्रों में इनकी गिरफ्तारी का समाचार प्रकाशित हुआ। न्यायालय पहले से ही दर्शकों से भरा हुआ था। ज्यों ही सावरकर कटघरे में घुसे, सैंकड़ों लोगों की करतलध्वनि ने इनका स्वागत किया। भारतीय दण्ड विधान की १२१-अ का अभियोग इन पर लगाया गया। इसके बाद इन्हें ब्रिक्सटन जेल भेज दिया गया। इनके मित्रों ने वहाँ से इन्हें छुड़ाने के लिये षड्यन्त्र रचे, परन्तु वे सब असफल हुए। बचाव के लिये फण्ड खोला गया, जिसमें भारतीयों के अतिरिक्त आयरिश लोगों ने भी

छन्दे दिये। फ्रैंच, जर्मन, पोर्चुगीज, अमेरिकन, चीनी, मिश्री और आयरिश पत्रों ने इस अभियोग में विशेष दिलचस्पी ली, तथा सावरकर के जीवन और कार्यों पर प्रशंसात्मक लेख लिखे। अंग्रेजी न्यायालय ने इन को भारत भेजने की आज्ञा दी। प्रिवि कौंसिल में इसकी अपील की गई, परन्तु वहाँ से भी भारत भेजने की ही आज्ञा हुई। भारत भेजने का अभिप्राय था कालापानी या फाँसी। इस प्रकार अपनी मृत्यु निकट समझ कर तथा अपने बन्धुबाधवों से मिलने की आशा न रहने से इन्होंने अपनी भावज के नाम 'मृत्युपत्र' लिख भेजा। उसमें कहा गया था "प्यारी भावज! क्या तुझे स्मरण है कि जब हम बातचीत करते हुए भोजन करने बैठते थे तो कभी श्रीरामचन्द्र के बनवास की कथा निकल पड़ती, और कोई इटली देश के स्वतंत्र होने का इतिहास कहने लगता, कभी हम वीर तानाजी के गीत गाने लगते और कभी-कभी चित्तौड़गढ़ और पूने के शनिवारवाड़े की बातें होने लगतीं। उस समय दास्यता के बन्धनों से जकड़ी हुई, शत्रुओं के शरों से बिधी हुई, अनाथा प्रिय भारतमाता का स्मरण हो आता। उसके दुःख में प्रवित्त होकर मैं युवकों को उपदेश दिया करता था। देवि बहिनी! क्या तुझे स्मरण है कि उस समय युवकदल ने कहा था 'हम बाजी प्रभु बनेंगे, और युवतियों ने भी गर्व से कहा था 'हम भी चित्तौड़ की वीराङ्गनायें बनेंगी।' बहिनी! हमने वह व्रत पागलपन से न किया था, अपितु

सोच समझ कर ही धारण किया था। उन प्रतिज्ञाओं को स्मरण करो और आज की अवस्था को देखो। अभी आठ वर्ष भी पूरे नहीं हुए कि हमारा उद्देश्य इतना अधिक सफल होगयाहै। देखो, हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक इस देश में हलचल मच गई है और वह दीनता का त्याग कर वीरता को धारण कर रहा है। फिर बताओ, ऐसे समय मन को हर्ष क्यों न हो? रघुवीर के चरणों में भक्तों की भीड़ लगी है। उधर यज्ञकुण्ड में हुताशन प्रदीप्त हो रहा है। यज्ञ के लिये दीक्षा लिये हुओं की परीक्षा का समय आता है। रघूत्तम प्रभु पूछते हैं 'कहो, कौन इस अग्नि में अपनी आहुति डालने को तय्यार है?' उस दिव्य निमंत्रण को पाकर हमने गर्ज कर कहा था 'हमारा कुल प्रस्तुत है!' यह कह कर हमने ईश्वरीय सम्मान प्राप्त किया है। भाभी! वह कहना अर्थहीन न था। अनन्त यातनाओं को सह कर भी न हमारा धैर्य ही टूटा है और न निष्काम कर्म ही। आज हमारी प्रतिज्ञायें पूर्ण हुईं। अपनी माँ को बन्धविमुक्त कराने के लिये प्रज्वलित अग्निकुण्ड में अपना स्वार्थ जला कर आज हम कृतार्थ हो गये हैं।

"मेरी मातृभूमि! तेरे चरणों पर मैं अपना मन, वाग्वैभव, कवितावधू-सभी कुछ अर्पण कर चुका हूँ। मेरे लेखों के लिये भी तेरे बिना कोई अन्य विषय नहीं है। तेरे लिये मैं अपना यौवन, देह, भोग, गृह, धन, कान्ता, ज्येष्ठ भ्राता—सभी को

चढ़ा चुका हूँ। अब मैं स्वयं अपना देह भी चढ़ाने के लिये प्रस्तुत हूँ। यही क्या, यदि हम सात भाई भी होते तो भी तेरी बलिवेदी पर मैं उन्हें चढ़ा देता। इस भारतभूमि की तीस करोड़ सन्तान हैं, जो मातृभक्ति में लगे हुए हैं, वे धन्य हैं। हमारा कुल भी उन्हीं में से एक है। प्यारी भावज! इस तरह सोच कर अपने व्रत का पालन कीजिये और अपने कुल की दिव्यता का वर्धन कीजिये। श्री पार्वती ने हिमालय जैसे पर्वत पर तप किया है। कई राजपूतनियां हँसते-हँसते जल चुकी हैं। प्यारी भावज! भारतीय ललनाओं का वह बल और तेज अभी नष्ट नहीं हुआ है, इस बात को प्रमाणित करने के लिये तुम्हारा सारा व्यवहार वीरांगना की तरह ही होना चाहिये। देवि! यहाँ से मेरा तुझे यही सन्देश है। मैं तेरा बालक तेरे वत्सल चरणों को यहीं से प्रणाम करता हूँ। मेरा प्रेमपूर्वक प्रणाम स्वीकार करो।"

नवम पर्व

-:०:—

समुद्रतरण

यद्यपि सावरकर को भारत ले जाने की आज्ञा हो चुकी थी, परन्तु अभी उसे क्रियान्वित न किया गया था। उन दिनों इंग्लिश खाड़ी को पार कर फ्रांस उतर कर वहां से रेल द्वारा इटली जाकर और फिर वहां से जहाज़ द्वारा भारत आया जाता था। उस समय भारत आने का यही साधारण मार्ग था। परन्तु अंग्रेज़ी सरकार इन्हें फ्रांस में से ले जाना नहीं चाहती थी, क्योंकि उसे ज्ञात हो चुका था कि सावरकर के फ्रैंच भूमि में घुसते ही पण्डित श्यामजी अंग्रेज़ पुलिस पर सावरकर को बलपूर्वक क़ैद करने का दावा फ्रैंच न्यायालय में चलायेंगे। इसलिये इस मार्ग को छोड़ बिस्के की खाड़ी द्वारा ले जाने का निश्चय किया गया। १६१० ई० में २६ वर्ष की आयु में सावरकर बैरिस्टर के स्थान पर क़ैदी का वेष धारण कर मातृभूमि के अन्तिम दर्शनों को चल पड़े। जहाज़ पर इनकी देखरेख के लिये भारत से विशेषरूप से भेजे हुए हिन्दुस्थानी सिपाही तथा स्कॉटलैंडयार्ड के चुने हुए अधिकारी रक्खे गये थे। अंग्रेज़ी सिपाही इस खुशी में फूले न समाते थे कि इस भयङ्कर क्रांतिकारी को हमने किस चतुराई से बन्दी बनाया है। उधर सावरकर भी मनही मन सोच रहे थे कि किसी प्रकार स्वतंत्र होकर

इनके इस घमण्ड को तोड़ दिया जाये। यदि यह न हो सके तो कम से कम कोई साहसिक कार्य अवश्य करना चाहिये जिससे इनकी चतुराई पर पानी फिर जाये और योरुप के समस्त देशों का ध्यान भारतीय राजनीति की ओर आकृष्ट हो जाये, परन्तु किया किस प्रकार जाये ? सब पहरेदार चौकन्ने थे। वे अच्छी प्रकार जानते थे कि जिस व्यक्ति को वे ले जा रहे हैं उसने अपने षड्यन्त्रों द्वारा निरन्तर चार वर्ष तक अंग्रेज़ सरकार को परेशान रक्खा है। इसलिये वे इनके एक-एक कार्य को बड़ी दृष्टि से देख रहे थे। इसी उधेड़बुन में उचित अवसर की प्रतीक्षा की जाने लगी। सौभाग्य से ऐसा अवसर आ ही निकला। यद्यपि जहाज़ को दूसरे मार्ग से ले जाना था, परन्तु किसी कारण वह मार्सेल्ज़ (फ्रांस) होकर ही जाने लगा। यह देखकर सावरकर सोचने लगे कि सम्भव है कुछ हिन्दुस्थानी वीर मेरी मुक्ति के लिये वहां आये हों। जहाज़ ने मार्सेल्ज़ में लङ्गर डाला। परन्तु दूर तक कोई भी सहायक दिखाई न दिया। बाहरी सहायता के अभाव में अब अपना प्रयत्न ही शेष था। किन्तु अब पुलिस का पहरा पहले से भी अधिक कठोर था। वह इन्हें अकेला छोड़ कर एक मिनट को भी इधर उधर न जाती थी। स्नान, शौचादि के समय भी वह दरवाज़े से अड़कर खड़ी होती थी और सामने लगे हुए बड़े दर्पण में इनका प्रतिबिम्ब देख कर प्रत्येक कार्य पर ध्यान रखती थी। इसके होते हुए भी सावरकर ने रात में एक दो बार भागने का

प्रयत्न किया । यद्यपि ये असफल हुए तथापि पुलिस को इसका ज्ञान भी न हो सका। इन्हीं प्रयत्नों में रात बीत गई। भोर हुआ। जहाज़ चलने का समय हो रहा था। सावरकर अपनी तङ्ग कोठरी में बैठे सोच रहे थे कि यदि कुछ करना है तो अभी करना होगा। पर किया क्या जाये? पास में दो अंग्रेज़ अधिकारी सो रहे थे और एक सिपाही जाग कर पहरा दे रहा था। आखिर निश्चय किया कि एक बार प्रयत्न और किया जाये। इन्होंने पहरे वाले गोरे से कहा "उठिये, भोर हो गया है। शौच के लिये चलिये।" वह अपने अफ़सर को जगाने लगा। इन्होंने सोचा "बस खेल ख़त्म हो गया। यह अवसर भी जाता रहा। अब कुछ न हो सकेगा।" अफ़सर और सिपाही दोनों के बीच में पकड़े हुए सावरकर कोठरी में घुसे। कोठरी के ऊपर इक छोटी सी खिड़की (पोर्ट होल) थी। वह कुछ खुली हुई थी। अब प्रश्न था कि उस तक पहुँचा किस प्रकार जाये? बाहर गोरा सिपाही कोठरी के दरवाज़े में से झांक-झांक कर सामने रक्खे दर्पण में इनकी एक-एक हलचल देख रहा था। अपने स्थान से ज़रा हिलते ही वह चिल्लाने लगता था। यदि असफलता हुई तो पुलिस नाना प्रकार के कष्ट देगी। भागने पर गोलियां भी दागी जायेंगी। परन्तु 'अभिनव भारत' के प्रधान को इतनी सुगमता से गिरफ़्तार होना भी तो शोभा नहीं देता। असफलता हुई तो क्या है? कम से कम संसार पर भारतीय शौर्य और पराक्रम की छाप तो

बैठ जायगी। कुछ करना ही पड़ेगा। "अभी या कभी नहीं" ये शब्द इनके मस्तिष्क में तेज़ी से घूमने लगे। जल्दी से गाऊन उतार कर कोठरी के दरवाज़े पर डाल दिया। सिपाही को अन्दर का दृश्य दीखना बन्द हो गया है। वह अभी संभल भी न पाया था कि ये कूद कर खिड़की तक जा पहुँचे। सिपाही बोला "क्या करता है, क्या करता है ?" दरवाज़ा बन्द पाकर वह शोर मचा कर औरों को इकट्ठा करने लगा। इतने में ये खिड़की में घुस गए। गुस्से में सिपाही ने दरवाज़ा तोड़ दिया। वह अभी अन्दर घुस भी न पाया था कि सावरकर खिड़की से निकल कर धड़ाम से समुद्र में कूद पड़े। निशाना साध कर गोलियां दागी गईं, परन्तु ये डुबकी लगा कर निशाना बचाते हुए लहरों पर उछलते हुए आगे ही आगे बढ़ते गये। सिपाही और अधिकारी खिड़की के पास गये, परन्तु किसी मे कूदने का साहस न हुआ। वे दौड़े हुए जहाज़ कप्तान के पास गये। ब्राब्रिज (पुल) फैंका गया। सिपाही और अधिकारी उस पर दौड़ने लगे। इस बीच में सावरकर किनारे लग गये थे। किनारे की दीवार बहुत ऊंची थी, परन्तु 'अभिनव भारत' संस्था में सीधी दीवार पर चढ़ने का अभ्यास कराया जाने से इस समय इनके जीवन की रक्षा हुई। दीवार पर चढ़ कर ये फ्रांस की भूमि पर पहुँचे, यह सोच कर कि अब मैं फ्रांस की रक्षा में आ गया हूं, इन्होंने फ्रांस की स्वतंत्र वायु में लम्बे-लम्बे सांस लिये। इतने में ही

इन्होंने पीछे मुड़ कर देखा कि अधिकारियों और सिपाहियों का एक बड़ा झुण्ड "चोर है, पकड़ो, पकड़ो" यह चिल्लाता हुआ आ रहा है। यद्यपि तैरते हुए और दीवार पर चढ़ते हुए सावरकर थक गये थे, परन्तु यह देख कर कि अंग्रेज़ पुलिस अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून को तोड़ कर फ्रैंच भूमि में ही गिरफ्तार करना चाहती है, ये एक दम भाग खड़े हुए। एक मील तक दौड़ जारी रही। भागते हुए ये बार-बार इधर उधर देखते जाते थे कि कोई भारतीय अथवा फ्रैंच सिपाही मिल जाये जिसकी सहायता से अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून को तोड़ने वाले अंग्रेज़ सिपाहियों को पकड़वाया जा सके। पास से ट्राम गाड़ियां बड़ी तेजी से दौड़ी जाती थीं, परन्तु जेब में एक पैसा भी न था जो उनमें बैठ कर कहीं भाग निकलते। हिन्दुस्थान से दस हज़ार मील दूर एक भारतीय युवक अंग्रेज़ों की सशस्त्र भीड़ द्वारा केवल इस अपराध के लिये कि उसने स्वाधीन होने का साहस किया है, जंगली जन्तुओं की तरह पीछा किया जा रहा था। उस समय इनका जीवन केवल तीन-चार पैसों पर आश्रित था, परन्तु क़ैदी के पास पैसे कहाँ से आयें? इस पर भी इन्होंने धैर्य न छोड़ा। आगे आगे सावरकर "पुलिस, पुलिस" चिल्लाते हुए दौड़ रहे थे और इनसे पचास ही क़दम पीछे अंग्रेज़ सिपाही "चोर, चोर" कहते हुए भाग रहे थे। सिपाहियों की आवाज़ सुन कर राहगीर भी सावरकर का रास्ता रोकने लगे, परन्तु वे बचकर निकलते गये। इतने में ही एक फ्रैंच सिपाही दिखाई दिया।

उसे आत्मसमर्पण कर ये टूटीफूटी फ्रैंच में बोले "मैं चोर नहीं हूं, अपितु भारत की स्वतन्त्रता के लिये लड़ने वाला, अंग्रेज सरकार द्वारा पकड़ा हुआ कैदी और फ्रांस का एक निर्दोष अभ्यागत हूं। अब मैं क़ैद से छूट कर फ्रैंच भूमि पर आगया हूं। अंग्रेज पुलिस को इस देश में मुझे पकड़ने का कोई अधिकार नहीं है। इस लिए आप मुझे फ्रैंच मजिस्ट्रेट के पास ले चलें।" परन्तु वह मूर्ख सिपाही इन ऊंची बातों को क्या समझता ? उसने सोचा कि ये ज़री के फीते लगाये हुए बड़े डीलडौल वाले अंग्रेज़ सिपाही झूठ नहीं बोल सकते। इस लिये गीला बनियान और पाजामा पहिने हुए धूलिधूसरित छोटे क़द का युवक अवश्य चोर ही है। फ्रैंच सिपाही सावरकर को पकड़ कर अंग्रेज़ पुलिस को सौंपने लगा, परन्तु ये बोले "न्यायालय में पेश किये बिना आप मुझे किसी दूसरे को सौंप नहीं सकते।" किन्तु फ्रैंच सिपाही क़ानून की अपेक्षा रिश्वत से अधिक परिचित था। जब अंग्रेज़ अधिकारियों ने चमकती हुई सोने की गिन्नियां उसे भेंट कीं तो उसने सावरकर को प्रसन्नतापूर्वक अंग्रेज़ सिपाहियों के सुपुर्द कर दिया किन्तु ये इतनी सुगमता से जाने वाले न थे। परिणामतः एक गोरे ने ज़ोर का घूंसा सिर पर मारा। फिर क्या था, सावरकर उस पर

टूट पड़े और बोले "इससे पूर्व की तुम मुझे मारो मैं तुम में से कम से कम एक को अवश्य समाप्त कर दूंगा।" यह धमकी असर कर गई और मारपीट बन्द हो गई। सावरकर एक बार फिर जहाज़ की उसी तंग कोठरी में बन्द कर दिये गये।

दशम पर्व

:o:-

फ्राँस से भारत की ओर

जहाज़ मार्सेल्ज़ से भारत की ओर चला। सावरकर की छोटी कोठरी अफ़सरों और सिपाहियों से भरी हुई थी। वे इन्हें नाना प्रकार के कष्ट देने की धमकियां दे रहे थे। एक सिपाही ने अपनी तलवार नंगी करके सामने लटका दी। दूसरे ने अपनी भरी हुई पिस्तौल पतलून की जेब में रख कर उसे खूंटी पर टांग दिया। इनके दोनों हाथ हथकड़ियों से जकड़ दिये गये। घूमना फिरना बन्द कर दिया गया। आसपास की कोठरियां खाली करा दी गईं। चारों ओर सन्नाटा छागया। रात्रिकी छायाएँ पड़ने लगीं। सावरकर आंख मून्द कर पड़े ही थे कि गोरा अफ़सर इन्हें सुनाता हुआ कहने लगा "रात हो जाने दो। साले को खूब मज़ा चखायेंगे।" इन्हों ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर घूर कर बोला "कैसा बदमाश है।" ये फिर भी चुप रहे। इस चुप्पी से खीज कर गोरा बोला "उस समय मैं सो रहा था वर्ना अच्छी मरम्मत करता।" यह सुन कर सावरकर उठ बैठे और बोले "देखिये महाशय! जिसे आप विद्रोह बोलते हैं उसका प्रथम झंडा खड़ा करते ही मैंने अपने घर को आग लगा दी थी। इतना कर चुकने

पर ही मैं दूसरों के घरों पर आग रख रहा हूँ। जीवित होते हुए भी मैं अपने को इस समय मृततुल्य समझता हूँ, परन्तु आपकी दशा मुझ से विपरीत है। आपको अभी जीना है और सांसारिक सुखों का उपभोग करना है। इस लिये मुझे यातना देने की बात मुँह से निकालते समय उस पर कम से कम दो बार अवश्य विचार कर लीजिये। यह ठीक है कि मैं इकेला आप सबका मुकाबला नहीं कर सकता हूँ, परन्तु यह निश्चय जानिये कि मैं आप में से दो चार को मार कर ही मरूँगा।" सावरकर की यह चेतावनी थोथी न थी, क्योंकि इन्होंने सोच लिया था कि मारपीट आरम्भ होते ही ये पतलून से पिस्तौल निकालकर उनमें से जितनों को गिरा सकेंगे गिरा कर अपना भी अंत कर लेंगे। इनका कहना वृथा न गया। गोरा सहम गया और नम्रता से बोला "आप चिन्ता न कीजिये। मैं आपको कोई कष्ट न दूँगा। देखिये, मैं आपसे अब तक कैसी सभ्यता से बरतता रहा हूँ। परन्तु आपने धोखा देकर मुझे इस विपत्ति में डाल दिया है। तनिक सोचिये, इस प्रकार भाग कर आपने मेरी नौकरी छुड़ाने तथा मेरी स्त्री और बालबच्चों के मुँह का ग्रास छीनने का यत्न किया है। इसी कारण क्रोधवश मेरे मुँहसे आपके प्रति कुछ अपशब्द निकल गये।" इस पर सावरकर बोले "आपका कहना एक तरह से ठीक है, परन्तु क्या आपकी तरह मेरे घर में बन्धुबान्धव नहीं हैं? ऐसी अवस्था में वारण्ट लेकर मुझे पकड़ते समय तथा इतनी कठोरता से

फांसी के पास ले जाते समय क्या आपने भी मेरे बालबच्चों का ध्यान किया है ? इसमें सन्देह नहीं कि आप सभ्यता से बोलते रहे हैं, परन्तु मैंने भी आपसे कोई असभ्य व्यवहार नहीं किया। वस्तुः दोष उस परिस्थिति का ही है जिसमें हम दोनों की परस्पर भेंट हुई है। ऐसी दशा में जब तक आप मुझे जकड़ कर फाँसी देने को ले जायेंगे तब तक मैं भी शक्तिभर इस बन्धन से छूटने का उद्योग करूँगा। इस के लिये हमें एक दूसरे को दोषी ठहराने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप मुझे फाँसी देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, तो मैं भी उससे बचना अथवा अपने बचाव में आपसे बदला लेना अपना धर्म मानता हूँ।' इस वार्तालाप के बाद वह नंगी तलवार उठा ली गई। गालीगलौज बन्द हो गया। यातनाओं की चर्चा आती रही, परन्तु पहरा इतना सख्त हो गया कि खुली वायु का मिलना भी कठिन हो गया। उस बन्द कोठरी में पड़े हुए सावरकर सोचने लगे "आखिर इस साहस का कुछ भी फल न निकला। स्वतंत्र तो हो ही न पाये, उल्टे पाँव की बेड़ियाँ ज़्यादा मज़बूत हो गईं। संसार में भारतीय राजनीति का प्रचार भो न हो पाया, क्योंकि 'समुद्रतरण' की बात फ्रैंच सिपाही के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता। वह भी कुछ समझा या नहीं, यह भी सन्देह है। इस प्रकार यह साहस तो व्यर्थ ही गया।" फिर सोचने लगे "मैंने शक्तिभर यत्न किया है। अन्तिम क्षण तक यत्न किया है। सफलता-असफलता तो

ईश्वराधीन है।" इस प्रकार विचारते हुए जहाज़ अदन आ पहुँचा। वहां समुद्रीय लहरों को देख कर सावरकर बोले "ऐ समुद्र! तू कुपित हो जा और मुझे अपनी लहरों में समा ले। ऐ जलनिधि! एक वार मैंने तुझ से अपने देश ले चलने को कहा था। आज वह इच्छा पूर्ण हो रही है, परन्तु यह वरदान शाप बन कर आया है। विजताओं क रथ के चक्र में दासों की तरह बांधे जाकर उनके विजयोत्सव की शोभा बढ़ाने की अपेक्षा कितना अच्छा हो कि यदि अभी समुद्र में तूफान उठे और मुझे अपने में निगल ले। ऐ मृत्यु देवि! तू प्रसन्न हो और मुझे अपने आँचल में ले ले।" इस विचारधारा में बहते हुए ये मुम्बई आ पहुँचे। नंगी किरचों के पहरे में इन्हों ने भारतभूमि पर पैर रक्खा और जंजीरों से जकड़े हुए हाथों से इस पुण्यभूमि को नमस्कार किया। एक बन्द मोटर में बिठा कर ये स्टेशन पहुँचाये गये और फिर वहां से बन्द गाड़ी द्वारा नासिक। नासिक की पुलिस चौकी में इन्हें रक्खा गया। चुने हुए पुलिस अधिकारी पहरे पर तैनात किये गये। इतनी देखरेख होते हुए भी इनके मित्र हवालात में इन्हें सब समाचार दे ही जाते थे। एक दिन एक अंग्रेज़ी पत्र में इन्होंने पढा कि फ्रैंच सरकार ने इंग्लिश सरकार से इन्हें वापिस मांगा है। इन्हें संतोष हुआ कि मेरा प्रयत्न वृथा न गया। अंग्रेज़ अफ़सर बड़े चकित थे कि मार्सेल्ज़ की घटना पत्रों में किस प्रकार छप गई? यह समाचार पहलेपहल पेरिस से कार्लमार्क्स के

पौत्र की आधीनता में निकलने वाले 'लाह्युमेनिटी' नामक साम्यवादी पत्र में छपा था। उसे सावरकर से बहुत सहानुभूति थी। इसलिये वह फ्रांस में हलचल मचाने लगा। इसके बाद दूसरे पत्रों में भी तीव्र आन्दोलन हुआ। दूर चीन से लेकर मिश्र तक के सभी पत्रों में फ्रैंच मांग का ज़ोरदार समर्थन किया गया। उस समय सभी देशों की दृष्टि ब्रिटिश न्याय की ओर लगी हुई थी। संसार भर की जनता यह टकटकी लगा कर देख रही थी कि इटली के क्रांतिकारियों—गेरिबाल्डी और मेज़िनी को शरण देने वाला इंग्लैंड आज फ्रांस में आश्रय पाये अपने विद्रोही के प्रति कैसा बर्ताव करता है? संसार ने अच्छी प्रकार देख लिया कि असहायों और पीड़ितों की रक्षा का नगारा पीटने वाली ब्रिटिश सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून को तोड़ कर अपने विद्रोही को फ्रांस भेजने से इन्कार कर दिया। इससे आन्दोलन और भी तीव्र हो गया। ऐसा जान पड़ने लगा कि शीघ्र ही दोनों देशों में भयङ्कर मुठभेड़ होगी। इस विवाद को शान्त करने के लिये यह विषय हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौंपा गया। फ्रैंच प्रतिष्ठा को अपील करते हुए एक हृदयस्पर्शी लेख सावरकर ने नासिक की हवालात में लिखा और वह वहां से निकल कर पैरिस के भारतीय क्रांतिकारियों के पास पहुँचा। उसे छाप कर समस्त देशों में वितीर्ण किया गया। उधर योरुप में यह आन्दोलन हो रहा था और भारत तथा इंग्लिश—दोनों सरकारें एक

पचीस वर्ष के भारतीय युवक के प्राण लेने के लिये लाखों रुपया व्यय करके हेग-न्यायलय के लिये अपना मामला तय्यार कर रही थी, इधर भारत में क्रांतिकारियों को दण्ड देने के लिये 'स्पैशल ट्रिब्यूनल ऐक्ट' पास करके विशेष रूप से एक ट्रिब्यूनल बनाया गया था। इसके निर्णय की अपील न हो सकती थी। इसी स्पैशल ट्रिब्युनल के सम्मुख मुम्बई हाईकोर्ट में इन पर अभियोग चलाया गया।

एकादश पर्व

—❀—❀—

ट्रिब्यूनल का निर्णय

सशस्त्र सिपाहियों द्वारा घिरी हुई बन्द मोटर में सावरकर मुम्बई हाईकोर्ट पहुँचाये गये । हथकड़ी पहना कर दो सिपाही इन्हें ट्रिब्यूनल के सामने ले गये। न्यायालय में घुसते ही तालियों की गड़गड़ाहट ने इनका स्वागत किया । चकित होकर ये ऊपर देखने लगे, परन्तु गैलरियों में एक भी दर्शक न था । मुड़ कर नीचे देखा तो तीसचालीस अभियुक्त बैठे दिखाई दिये। इनका अभियोग इन के साथ ही आरम्भ होना था। सब बड़ी उत्सुकता से इनकी ओर देख रहे थे । इन्हीं युवकों ने जंजीरों से जकड़े हुए हाथों से इनका स्वागत किया था । संसार के महापुरुषों का भव्य से भव्य और महान् से महान् स्वागत हुआ है, परन्तु ऐसा अनुपम स्वागत किसी का न हुआ होगा जैसा इन अभियुक्तों ने जंजीरों की झंकार से अपने नेता का किया। इस में से बहुतों का अपराध केवल सावरकर से सम्बन्ध रखना ही था । इस पर भी ये सब यातनायें हंसी-हंसी सह रहे थे । विश्वासघात इनके समीप भी न फटका था । इनका छोटा भाई नारायण भी इन्हीं अभियुक्तों में था, परन्तु मुख्य आरोपी सावरकर ही थे। अभियोग

आरम्भ हुआ। सरकार ने अपने पक्ष का ज़ोरदार समर्थन किया। राजद्रोह का आरोप लगाया गया। भारतीय दण्डविधान की धारा १२१-अ का अपराध था। इसका बचाव फाँसी अथवा कालेपानी के अतिरिक्त हो ही न सकता था और इसकी आगे कहीं सुनाई भी न हो सकती थी, ऐसी भीषण परिस्थिति में भी ये सर्वथा निरपेक्ष बैठे रहे। पूछने पर इन्होंने उत्तर दिया—"मैं इस अभियोग में बिल्कुल ही भाग न लूंगा। मुझ पर ब्रिटिश न्यायालय का नियम नहीं चल सकता, क्योंकि मुझे अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून तोड़ कर बलपूर्वक फ्रेंच भूमि में पकड़ा गया है।"

डेढ़ मास की जाँच के पश्चात् २३ दिसम्बर १९१० को ट्रिब्यूनल ने अपना लम्बा निर्णय पढ़ कर सुनाया। सबसे पूर्व सावरकर बुलाये गये। जज ने कहा "आप दोषी प्रमाणित हुए हैं। आपको प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये था, परन्तु हम आपको आजन्म कालेपानी की ही आज्ञा देते हैं और आपकी सब सम्पत्ति ज़ब्त की जाती है।" सिर झुका कर 'बन्दे मातरम्' बोल कर ये पीछे हट गये। इसके बाद अन्य अभियुक्त पुकारे गये और उन्हें भी चौदह से लेकर तीन वर्ष तक के कठोर करावास का प्रसाद बाँटा गया। अन्य अपराधों के साथ इन पर एक अपराध यह भी लगाया गया था कि ये लोग "स्वातंत्र्यलक्ष्मी की जय हो" का नारा बोलते हैं। ज्यों ही जज निर्णय सुना कर खड़ा हुआ त्यों ही सब अभियुक्तों ने ज़ोर से "स्वातन्त्र्यलक्ष्मी की जय हो" का नारा

लगाया। जज चौंक उठे। पुलिस अधिकारी धमका कर कहने लगे "पकड़ो, मारो, अब ये कैदी हैं।" सिपाहियों ने तुरन्त सावरकर को हथकड़ी पहना कर अन्य साथियों से पृथक् कर दिया। पुलिस द्वारा खींचे जाते हुए, अपनी टोपी उठा कर इन्होंने साथियों से विदा ली। उस समय ये सोच रहे थे कि अब इन स्वजनों से, छोटे भाई से और प्यारे देश से इस जीवन में फिर कभी भेंट न होगी परन्तु सरकार एक जन्म के कालेपानी से ही सन्तुष्ट न हुई। अभी उसे इनके जीवित लौटने की पूरी आशा थी। अतः जेल में सड़ा-सड़ा कर मारने के लिये नासिक के कलैक्टर की हत्या करने मे सहायता और उत्तेजना देने के अपराध मे दूसरा अभियोग चलाया गया। यह सुन कर सभी सोचने लगे कि पहले अभियोग मे फाँसी न दी जा सकी, इस लिये दूसरा अभियोग लगाया है। मित्रों ने इन्हें गुमनाम तार भेजे और हृदयस्पर्शी शब्दों में सफाई देने के लिये प्रार्थना की, परन्तु ये अपने वचन से रत्तीभर भी विचलित न हुए और पहले की ही भाँति अभियोग में भाग लेने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार मृत्यु को खुली चुनौती देकर ब्रिटिश न्यायालय से सच्चा असहयोग करने वाला प्रथम असहयोगी सावरकर ही है। प्राणदण्ड की आशा से ये न्यायालय मे गये, परन्तु अब की बार भी कालेपानी की ही आज्ञा हुई। उसे सुनकर ये बोल उठे "मैं प्रसन्न हूँ कि मुझे दो जन्म की सजा देकर अंग्रेज़ सरकार ने हिन्दु धर्म का अनेक जन्म का

सिद्धान्त तो मान लिया। मेरा विश्वास है कि केवल कष्ट सहन और बलिदान से ही हमारी मातृ-भूमि यदि शीघ्र नहीं तो भी निश्चित ही, विजय प्राप्त करेगी। इस लिये मैं आपके विधान द्वारा दिये गये बड़े से बड़े दण्ड को सहने के लिये प्रस्तुत हूँ।"

द्वादश पर्व

—:o:—

अन्तर्राष्ट्रीय न्याय की प्रतीक्षा

पचास वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड देकर सावरकर मुम्बई की डोंगरी जेल भेज दिये गये। अब हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा की जाने लगी। इस बीच इन्हें जेल के कपड़े और भोजन नहीं दिया गया। फिर भी ये जानबूझ कर अच्छे पदार्थ न खाते थे। एक दिन एक जेल अधिकारी ने पूछा "आप भोजन अच्छी तरह क्यों नहीं करते ?" इन्होंने हंस कर कहा "बहुत अच्छी तरह कर रहा हूँ। पर हां, वही वस्तुएं खा रहा हूँ जो सामान्यतः बन्दियों को मिला करती हैं। कौन जानता है कि कल मुझे भी बन्दियों के साथ काम करना पड़ेगा। तब ये पदार्थ न मिलेंगे, परन्तु जेल पदार्थ तो मिलेंगे ही। इसलिये इन चीज़ों से अभी से परिचय किये लेता हूँ जिससे आगे किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़े।" इतने में सुपरिन्टैंडैंट आया और सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में बोला "हेग का निर्णय आ गया है। वह आपके विरुद्ध हुआ है। आपको अंग्रेज़ पुलिस के सुपुर्द करने वाला फ्रैंच सिपाही जेल भेज दिया गया है। अंग्रेज़ सिपाहियों का ग्रेड घटा दिया गया है, परन्तु आपके न दण्ड में

ही परिवर्तन हुआ है और न खानेपीने की व्यवस्था में ही। अब आपको जेल के कपड़े पहनने होंगे और जेल का ही खाना, खाना होगा। आपका बन्दीवास आज से आरम्भ हो गया है"। ये घर के कपड़े उतार कर जल्दी-जल्दी जेल के कपड़े पहनने लगे। मन में विचार उठा "ये जेल के कपड़े जो मैं आज पहन रहा हूँ इस जीवन में फिर कभी न उतरेंगे। इन्हीं के साथ मेरी अर्थी निकलेगी।" इसी समय एक सिपाही ने लोहे का बिल्ला दिया। इस पर जेल से छुटकारे का दिन लिखा था। इसे छाती पर लटका दिया गया। ये सोचने लगे "मेरा छुटकारा! मौत का दिन ही मेरे छुटकारे का दिन है।" इन्हें चिन्तित देख सुपरिन्टैन्डैण्ट निष्ठुर हंसी से बोला "कोई परवाह नहीं, मेहरबान सरकार १९६० में तो तुम्हें जरूर रिहा कर देगी।" इन्होंने उत्तर दिया "जनाब! मौत सरकार से भी अधिक मेहरबान है। वह मुझे इससे पहले ही रिहा कर देगी।" अगले दिन इनकी तलाशी ली गई और ट्रिब्यूनल की आज्ञानुसार सब सामान ज़ब्त कर लिया गया। उपनेत्र और गीता भी छीन ली गई। सामान नीलाम किया गया और प्राप्त-धन राजकोष में जमा कर दिया गया। दूसरे दिन उपनेत्र और गीता लौटा दी गई, परन्तु अब यह सरकारी सम्पत्ति हो चुकी थी, केवल उपयोग के लिये दी गई थी। सख्त काम भी लिया जाने लगा। नारियल की जटायें कूट कर रस्सी बटने का काम सौंपा गया। पहले तो कुछ संकोच हुआ, परन्तु फिर मन को

समझाया "अरे मन ! उठ, बैठ, तय्यार हो। इससे तेरे मान पर कोई धक्का नहीं लगता और न इससे तेरा जीवन ही व्यर्थ जाता है। यह जीवन स्वयं इसी प्रकार की एक उधेड़बुन है। पंच महाभूतों की जटायें मिला कर यह जीवनरस्सी तय्यार की जाती है। अन्त में मृत्युरूपी डंडे से कूटपीट कर अपने प्रधानरूप में मिला दी जाती है। वनस्पति खाकर हम जीते हैं और मरने पर उस शरीर को वनस्पति खा जाती है। यही उधेड़बुन जारी है। यदि उससे जीवन व्यर्थ नहीं जाता तो यह भी हमारे लिये कर्तव्य ही है, क्योंकि यह उधेड़बुन उस बड़ी उधेड़बुन का आवश्यक भाग है।" यह सोच कर रस्सी बटनी आरम्भ कर दी।

अब प्रश्न हुआ कि इस निस्सहाय, निस्साधन तथा निरुत्साह एकान्त कारावास में ऐसा कौनसा काम हो सकता है जिसे मातृ-भूमि के चरणों में अर्पण कर अपने सिर से उसका थोड़ा भी ऋण-भार कम किया जा सके। उच्च श्रेणी के सभी बन्दियों की जीव-नियां अपने मन में दुहराईं। विचार आया कि 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रैस' के लेखक की तरह कुछ लिखा जाये, परन्तु जहां पैंसिल का आध इञ्च बराबर टुकड़ा रखना भी चोरी है, वहां लिखना कैसा? फिर सोचा, पत्रों में कुछ लेख लिख कर ही प्रचार किया जाये, किन्तु जहां कागज़ का टुकड़ा रखना भी अपराध है, वहां प्रचार कैसा? इस प्रकार सोचते हुए निश्चय किया कि प्रतिदिन मन ही मन दस से बीस कवितायें रच कर, उन्हें स्मरण कर लिया जाय।

इस प्रकार पचास वर्ष में यदि कोई महाकाव्य तय्यार किया जा सका तो उसे मातृ-भूमि के चरणों में अर्पण कर दिया जायेगा। इसके अनुसार पहले गुरु गोविन्दसिंह का चरित्र लिखने का संकल्प किया। एक दिन हवल्दार आकर कहने लगा। "चलिये, आपको साहब बुलाता है।" कार्यालय में जाकर देखा कि लोहे की छड़ वाली खिड़की के पास इनका साला इनकी स्त्री को लिये खड़ा है। यह पहला ही अवसर था जब ये जेल में जीवन बिताने वाले लोगों के दुःखमय स्वरूप में अपनी पत्नी से मिल रहे थे। स्नेहशून्य, निर्दयी लोगों के सशस्त्र पहरे में इन्होंने अपनी प्रेयसी से विदाई ली। इस विदाई का यही आशय था कि इस जन्म में दोनों की फिर कभी भेंट न होगी। वहां रहते हुए एक दिन इन्हें समाचार मिला कि नव वर्ष के दिन लन्दनवासी भारतीयों ने एक सभा की थी और सभामन्दिर की दीवार पर इनका एक बहुत बड़ा चित्र लगाया था। उस दिन सर हेनरी काटन ने सभा में बोलते हुए चित्र की ओर संकेत करके इनके त्याग, साहस और देशभक्ति की प्रशंसा की थी। इस भाषण से अंग्रेज़ी समाज में बड़ी सनसनी फैल गई। एक ने कहा कि इनकी 'सर' की उपाधि छीन लेनी चाहिये। दूसरे ने कहा कि इनकी पैंशन बन्द कर लेनी चाहिये। अपने को सरकारी कोप से बचाने के लिये उस समय की कांग्रेस के प्रधान वेडरबर्न और नेता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने कलकत्ते में एक सार्वजनिक सभा की और उसमें

सावरकर का उल्लेख कर स्पष्टरूप में घोषणा की कि सावरकर और इनके साथियों से हमारी तनिक भी सहानुभूति नहीं है। इस जेल में एक मास रहने के पश्चात् एक दिन एक बन्द गाड़ी में बिठा कर इन्हें डोंगरी से बड़ी और एकान्त जेल में पहुंचाया गया। हवल्दार से पूछने पर पता चला कि यह मायखला बन्दीगृह है।

त्रयोदश पर्व

—:o:—

मायखला का बन्दीगृह

मायखला बन्दीगृह बहुत निर्जन स्थान पर था। इस पर भी देशविदेश घूमे हुए बैरिस्टर के पास मन लगाने को कोई साधन न था। सब पुस्तकें छीनी जा चुकी थीं। अन्ततः बाईबल की मांग की। बहुत प्रतीक्षा के बाद केवल संध्या समय पढ़ने का आदेश कर बाईबल दे दी गई। इस समय तक गुरु गोबिन्दसिंह का काव्य पूरा हो चुका था। 'सप्तर्षि' कविता भी समाप्त हो गई थी। अब ईसामसीह का चरित्र मराठी में कविताबद्ध करने का संकल्प किया। यहां रहते हुए इनके छोटे भाई नारायण ने जो इसी जेल में थे, इन्हें एक पत्र भेजा। इसमें लिखा था "दिव्यव्रत की पूर्ति के लिये यदि इससे भी अधिक कष्ट उठाना पड़ा तो कोई चिन्ता की बात नहीं।" ऐसे धैर्य्यद संदेश को पढ़ कर इन्होंने उत्तर दिया "जिस प्रकार भगवती सीता के दोनों पुत्रों ने गुरु-आज्ञा से चारों ओर रामायण को प्रसिद्ध किया था, उसी प्रकार मैं भी अपने कुमारों के मुख से उस महाकाव्य को देश भर में प्रचलित करा दूंगा जिसे इस समय मैं रच रहा हूँ।" इसके एक दो दिन-पीछे ही नारायण किसी दूसरी जेल भेज दिये गये। यद्यपि दोनों भाई

एक ही जेल में थे और दोनों में केवल एक भीत का ही अन्तर था, तथापि दोनों की कभी भेंट न हो सकी थी। वे यहां से कब और कहां गये, यह भी जानने न दिया गया था।

यहां पर इतनी देख भाल के लिये जो पहरेदार नियुक्त किया गया था वह विशेष रूप से उजड्ड और विनोदी था। वह राजकीय चर्चा कर सदा इन्हें यह समझाने का यत्न करता था कि ये पागलपन का काम कर व्यर्थ ही अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। वह आते जाते बन्दियों को बुलाता और इनकी ओर संकेत करके कहता देखो, हमारा शेर। पुरुष हो तो ऐसा हो। पर किया क्या जाये? "अजब तेरी माया अजब तेरा फेर। मकड़ी के जाले में फंसा है शेर।" कभी वह आप ही कहने लगता "कहाँ यह प्रबल सरकार और कहां ये लड़के? अंग्रेज़ों से राज्य लेंगे ये! देखो तो तमाशा!" यह कह कर वह हाथ की लकड़ी से पटा खेलता और पैंतरे बदल-बदल कर नाचता। फिर पास बैठे बन्दियों से पूछता "अरे रामा! मेरी इस तलवार के वार से हवा मर गई तो?" इसपर सब बंदी हंस पड़ते। वह और भी इतराकर कहता "अरे, हंसते क्या हो? हमारे ये महाराज तो आठ दस लड़के साथ लेकर अंग्रेज़ी राज्य लेने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्या इससे मेरा हवा को तलवार से मारने का काम अधिक हास्यास्पद है?"
कभी वह सिपाहियों को बुला कर कहता "न जाने रेख निकलने

निकलते इन्हें लोहे की बेड़ियों से लिपटने का प्रेम क्यों उत्पन्न हुआ ?" फिर कहने लगता "नहीं भाई ! यह काम इनका नहीं है। यह तो उन बड़े लोगों का मालूम होता है जिन्होंने अपनी थैली तो भर ली और इस वीर को आगे ढकेल दिया। दादा साहब ! देखो, मैं आप से कितना सुखी हूँ। पहली नौकरी की पैंशन मिलती है और यहां भी हर महीने वेतन पाता हूँ। पचास साठ रुपये तनख्वाह लेता हूँ और आनन्द से जीवन बिताता हूँ। और तुम, सोने जैसा शरीर, युवावस्था, बैरिस्टरी पास दिवान की लड़की घर में—सब कुछ होकर भी कुछ नहीं। नाश कर दिया जीवन का। क्या करते हैं ? देश का काम। महाराज ! पागल हो गये हो पागल।" जिस प्रकार शेर को बांध कर, गाड़ी पर लाद कर लोगों के मनोरञ्जन के लिये नगर में घूमते हैं, उसी प्रकार चोर डाकुओं के मनोरञ्जन के लिये अपना तमाशा होता देख कर ये सोचा करते थे कि इससे तो फांसी पर चढ़ जाना ही अच्छा है, परन्तु फिर विचार उठता "बन्दीघर में शारीरिक यातना की भाँति मानसिक यातना भी सहनी चाहिये। यह कंटीला मुकुट मुझ से पूर्व अनेक महात्माओं को पहनना पड़ा है। उस समय उनकी दिल्लगी उड़ाई गई थी, परन्तु अब द्वीपद्वीपान्तरों के लोग उनके चरणों में मस्तक झुका रहे हैं।" इस प्रकार विवेक कर ये इस मानसिक कष्ट को भी सहने लगे। यहां रहते हुए कई मास बीत गये। अन्ततः अन्दमान जाने का समय आ पहुँचा।

भारत भर की जेलों से छंटे हुए बन्दी इस जेल में इकट्ठे हुए। इनके साथ ही सावरकर भी अन्दमान जाने के लिए बेड़ियां खन-खनाते हुये, हाथ में बर्त्तन लेकर, बगल में बिस्तरा दबाये जेलद्वार से बाहर हो गए।

चतुर्दश-पर्व

—o—

अन्दमान की ओर प्रस्थान

बन्दी लोगों की यह सेना पंक्ति बांध कर वेड़ियों को ताल पर बजाती हुई चलने लगी। बीच में जो कोई मिलता उसे "राम, राम" कर "चले भइया, कालेपानी को" कहती हुई जेल के आंगन से बाहर हो गई। सशस्त्र सिपाहियों की संरक्षा में यह सेना स्टेशन की ओर बढ़ी, परन्तु सावरकर रोक लिये गये। बस्ती में इनके अन्दमान जाने का समाचार फैल गया था और हज़ारों दर्शक मार्ग में खड़े हुए इनके दर्शनों की बाट जोह रहे थे, किन्तु सरकार मार्सेल्ज़ की घटना अभी भूली न थी। इस लिये इन्हें दो गोरे अधिकारियों के पहरे में बन्द मोटर द्वारा स्टेशन पहुंचाया गया। इन्हें मोटर में आता देख बन्दी लोग बोले "भई, वह राजा है। देखते नहीं हो, सरकार को भी मोटर देनी पड़ती है। हमारे साथ कहीं वह पैदल जाने वाला है ?" उनमें से एक बोला "अबे, सरकार डरती है। तभी तो उसे झट मोटर ला दी।" इस प्रकार सरकार का यह प्रयत्न कि बन्दियों में इनका प्रभाव बढ़ने न पावे, विफल हुआ और उनमें इनका सम्मान अधिकाधिक बढ़ता गया। गाड़ी के एक पृथक् डिब्बे में इन्हें बन्द किया गया। हाथों में हथकड़ी डाल कर दूसरा सिरा एक गोरे अधिकारी के

हाथ में बाँध दिया गया। गाड़ी छूटने पर जिस-जिस स्टेशन पर ठहरी उस-उस पर पहुंचने के पहले ही डिब्बे की खिड़कियां बन्द कर दी जाती थीं, परन्तु एक स्टेशन पर खिड़कियां खोल दी गईं। यहां इनके दर्शन के लिये दूर तक गोरे ही गोरे खड़े थे। कईयों ने तो उत्सुकता से अपनी लेडियों तक को कन्धे पर बिठा रक्खा था। इनको देखते ही वे चिल्ला उठे "वह है, वह है सावरकर।" इंग्लैंड छोड़ने पर खुली खिड़की वाले डिब्बे में बैठने का यह प्रथम ही अवसर था। गांव के पीछे गांव और नगर के पीछे नगर तथा वन उपवन, पर्वत और नदियां लांघती हुई यह गाड़ी खिसियानी बाघिन की तरह इन्हें अपने मुंह में दबाये भागी जा रही थी। ये सोचने लगे "जिस वेग से यह मुझे अपनी मातृभूमि से कालेपानी की ओर ले जा रही है, उतने ही वेग से क्या कभी यह मुझे मातृभूमि में लौटा कर भी लावेगी ? नहीं, मेरे लिये तो ऐसी आशा करना ही मानसिक आश्चर्य है। क्या सायबेरिया के मैदानों में हज़ारों राजबन्दियों ने 'रूस, रूस' कहते हुए प्राण नहीं छोड़े ? मैं भी उनकी तरह 'हाय भारत ! हाय हिन्दुस्थान !' कहता हुआ मर जाऊंगा।" इस प्रकार सोचते हुए मद्रास आ गया। इन्हें मद्रासी अधिकारियों के हवाले कर दिया गया। अन्दमान जाने के लिये 'महाराजा' नामक जहाज़ आ पहुंचा। एक छोटी नाव पर बिठा कर इन्हें जहाज़ तक पहुंचाया गया। 'जिस प्रकार मनुष्य किसी अर्थी को बांधते हुए उसे अच्छी तरह निहारते हैं,

उसी प्रकार सैंकड़ों दर्शक टकटकी लगाकर इन्हें जहाज़ पर चढ़ते हुए देख रहे थे। बात थी ठीक भी। जिस प्रकार अर्थी बान्धने के समय उसके आत्मीय जन सोचते हैं कि अब यह संसार से सदा के लिये जा रहा है, उसी प्रकार इस जहाज़ पर जन्मबन्दियों को चढ़ते हुए देख कर लोग इन्हें स्वदेश के लिए सदा को मरा हुआ समझने लगे। लोहे के छड़ लगा कर बनाये हुए पिंजरे में इन्हें बन्द कर दिया गया और पहरेदार 'नमस्ते' कह कर चले गये।

सीटी हो गई। बम्बे ने भों-भो किया। धक्का लगा और जहाज़ छूट गया। पिंजरे में दो-तीन छेद थे। कुछ बन्दी उनमें से समुद्रतट की ओर देख कर कहने लगे "घर छूट गया, भाइयो! घर छूट गया।" कुछ एक रोकर कहने लगे "हाय! अब हमारा देश हमें कहां से दिखाई देगा?" बन्दियों मे कुछ पुराने पापी भी थे। वे इन्हें समझाते हुए बोले। "अरे, ज़रा इन बालष्टर साहब को तो देखो, गोरे भी इनकी धाक मानते हैं और टोपी उतार कर सलाम करते हैं। इनकी पचास साल की क़ैद से तो अपनी तुलना करो।" यह सुनकर उन्हें हिम्मत बंध आई। रात हो गई। सब बिस्तरे बिछा कर सो गये। इनके बिस्तरे के पास ही टट्टी का पीपा था। अधिक रात बीतने पर शौच जाने वालों का तांता बंध गया। मैला पीपे से गिर कर बिस्तरे के पास होकर बहने लगा। दुर्गन्ध से श्वास घुटने लगा। ये सोचने लगे "जीते जी ही नरकवास भुगतना पड़ रहा है" परन्तु मन को यह कह कर समझाया

"जिस शुद्धता का अहंकार मिट्टी में मिलाने के लिये बड़े-बड़े योगी कठोर तप करते हैं, दैवयोग से आज वह मुझे प्राप्त हो गया है। त्रैलिंग्य स्वामी ने क्या किया था? जब मजिस्ट्रेट ने उनके साधुत्त्व की अवलेलना कर कहा कि अद्वैतवादी अन्न ही क्यों खाते हैं, गोबर क्यों नहीं खाते? तो त्रैलिग्य स्वामी टट्टी फिर कर बात की बात में ही उसे खा गये। रामकृष्ण परमहंस के सम्बन्ध में भी ऐसी ही आख्यायिका प्रसिद्ध है। अनुष्ठान के लिये वे कलकत्ते के उस स्थान पर जा पहुँचे जहां सारे शहरका मैला फैंका जाता है। चार पाच सींक विष्टा में भर कर उन्होंने मुंह में रख लीं। फिर तू क्यों घबराता है? औरों की विष्टा से दूर भागता है, पर अपना मल तो पीठ पर लाद कर चलना ही पड़ता है।" यह सोच कर ये पर्वत की नाईं अचल पड़े रहे। इस अचलता को देख बन्दी लोग भी आश्चर्य करने लगे। इस प्रकार कई दिन बीत गये। एक दिन जहाज़ की गतिमरणासन्न रोगी की नाड़ी की तरह मन्द पड़ गई। थोड़ी देर बाद खल-खल शब्द करके, पानी में लंगर डालकर जहाज़ खड़ा हो गया। पता चला, अन्दमान आ गया है। बन्दियों को ले जाने के लिये बड़ी-बड़ी नावें और अधिकारियों के लिए लांचें आकर खडी हो गईं। सब बंदी नौकाओं द्वारा घाट पर पहुँचाये गए। अन्य बन्दियों पर देसी पुलिस का पहरा था, परन्तु इन पर गोरे अधिकारी नियुक्त किये गये थे।

पञ्चदश पर्व

— १ —

कैदियों का स्वर्ग

एक बार सर जेम्स ग्रिग ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका में अन्दमान की चर्चा करते हुए इसे "कैदियों का स्वर्ग" बताया था। यह स्वर्गस्थान, जहां सैकड़ों देशभक्तों ने "भारत, भारत" कहते हुए अपने प्राणों की बलि दी है और जहां यह भारतीय नैपोलियन सड़ा-सड़ा कर मारने के लिये ले जाया जा रहा था, उस देवपुरी की, वहां के राजा इन्द्र की तथा उसकी देवसेना की कथा इतनी भयानक और वीभत्स है कि उसे पढ़ कर मेरा विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति इसे "नरकस्थान" पुकारे बिना न रहेगा। इस नरकपुरी में भारतीय युवकों ने स्वतंत्रता का उच्चारण करने के अपराध में वहां के यमराज द्वारा ऐसी भीषण यंत्रणायें सहीं हैं कि उन्हें सुन कर नरक-यातनाओं का साक्षात् चित्र सामने खिंच जायेगा। ग्रिग महोदय की उस 'स्वर्गपुरी' का रोमांचकारी वर्णन अब आपके सम्मुख किया जाता है।

कलकत्ते से छः सौ मील दूर बङ्ग-समुद्र में एक द्वीपपुञ्ज है जिसे अन्दमान कहते हैं। इस द्वीपसमूह का मान-आकृति अंडे जैसी होने से इसे अन्दमान बोला जाता है। पहले जहां पर घने जंगल थे

इससे बराबर वर्षा होती रहती थी। यहां तक कि ग्रीष्म ऋतु में भी रिमझिम पानी बरसता था, परन्तु अब जहां जङ्गल काट कर खेती होने लगी है। वहां का तापमान हिन्दुस्थान के उष्ण भाग जैसा हो गया है। खालों और दलदलों की भरमार होने से पेड़ों और बेलों के पत्ते गिर-गिर कर सड़ा करते हैं जिससे ज़ोर का मलेरिया फैलता है और लोग बहुत कष्ट पाते हैं। मलेरिया फैलाने वाली मक्खियां यहां इतनी और इतने प्रकार की हैं कि उनका वर्णन कर सकना कठिन है। जोंकें भी यहां बहुत हैं। मनुष्य की गन्ध आते ही इनके आनन्द की कुछ सीमा नहीं रहती। चलते समय ये पैर के तलुवों से चिपक जाती हैं और खून चूसती चली जाती हैं। बड़े-बड़े बदमाश, चोर और डाकू, जो कारागार की कठोर से कठोर यातना को भी कुछ नहीं समझते, जब जङ्गल में लकड़ी काटने के लिये भेजे जाते हैं, उस समय वे जोंकों के डर के मारे थर-थर कांपने लगते हैं। यहां के जंगलों में खन-खजूरे भी बहुत हैं। इनकी लम्बाई एक हाथ और चौड़ाई एक इंच से अधिक होती है। इनके काटते ही मनुष्य को लकवा हो जाता है। कई शताब्दियों तक इन जंगलों में मनुष्य का प्रवेश नहीं हो सका। इससे इन जन्तुओं की संख्या भयानक प्रमाण में बढ़ती ही गई है। भारतीय पशुपक्षी पहले तो यहां बिल्कुल न थे, परन्तु कुछ वर्षों से ब्रिटिश सरकार ने मैना, तोते, बाज़, गिल-हरियां, मोर, हरिण, कुत्ते, गीदड़ आदि बहुत से भारतीय पशु-पक्षी

लाकर छोड़े हैं। कौओं ने भी यहाँ अपना उपनिवेश बसाया है। इससे अन्दमान कुछ-कुछ भारत जैसा प्रतीत होने लगा है। यहाँ जो जंगली लोग रहते हैं उनमें 'जावरा' नाम की एक जाति है। इस जाति के लोग चार से साढ़े चार फुट तक ऊँचे होते हैं। ये रंग में बिल्कुल काले होते हैं। इनके सिर के बाल कड़े, छोटे और घुंघरीले होते हैं। दाढ़ीमूच्छ इनकी होती ही नहीं; कपड़े पहनने का पाप ये भूल कर भी नहीं करते। शरीराच्छादन प्रवृत्ति को तृप्त करने के लिये ये लोग साधुओं की तरह लाल मिट्टी पोत लेते हैं। स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान नंगी ही रहती हैं। कोई-कोई की कमर पर पेड़ के पत्ते लटका लेती हैं। सादे जीवन की माला जपने वाले लोगों की स्वप्नदृष्टि के ये साक्षात् उदाहरण बन रहे हैं। नई सभ्यता की पहुँच इन तक कभी हुई ही नहीं है। धनुषबाण इनका रातदिन का साथी है। कभी-कभी ये छिप कर सरकारी बस्तियों पर आक्रमण करते हैं और छापे मार कर भाग जाते हैं। ये लोग अब तक नरमाँसभक्षक हैं। जंगलों में रहते हुए भी इनमें 'ब्राँडी' और देसी मदिरा का खूब प्रचार है।

अन्दमान का आधुनिक इतिहास १७७६ से प्रारम्भ होता है। इससे पूर्व जिन्हें कालेपानी का दण्ड होता था वे सिंगापुर, पेनाँग, मलाका, टेनेसरीम आदि द्वीपों में निर्वासित किये जाते थे। १७७६ में इंजनीयर कोल्ब्रुक और कप्तान ब्लेयर ने यहाँ उपनिवेश बसाने का उद्योग किया था। इन्हीं ब्लेयर साहब के नाम से

अन्दमान का बन्दर आज भी 'पोर्टब्लेयर' नाम से प्रसिद्ध है। यह इस द्वीपसमूह का प्रमुख बन्दर तथा द्वीप है। इसके अनन्तर १८५७ के स्वातंत्र्ययुद्ध में जो भारतीय सैनिक निर्वासित किये गये थे वे इसी द्वीप में लाकर छोड़े गये थे। वासुदेव बलवन्त फड़के ने जो राज्यक्रान्ति की थी उनके साथी भी अन्दमान भेजे गये थे। मुम्बई के हिन्दु मुस्लिम दंगे में जिन हिन्दुओं को दण्ड दिया गया था वे लोग भी अन्दमान ही भेजे गये थे। मणिपुर की राज्यक्राँति करने वाले, अलीपुर और मणीकतल्ला बॉम्बकेस के अभियुक्त तथा विनायक के बड़े भाई गणेशपन्त सावरकर भी यहीं भेजे गये थे। इस प्रकार राजनीतिक तथा सार्वजनिक आन्दोलन में भाग लेने वाले सैकड़ों व्यक्तियों ने सावरकर से पूर्व ही इस 'भारतीय बैस्टाईल, की यमयातनाओं को सहा था अथवा इस समय भी सह रहे थे। यहीं पर अपनी अस्थियों से अपनी समाधि चिनने के लिये आज़ सावरकर पहुँचे थे। घाट से चल कर ये जेलद्वार पर पहुँचे। लोहे के फाटक ने दाँत कटकटाये और अपना मुँह खोल दिया। इनके अन्दर घुसते ही उसने ऐसा मुँह बन्द किया कि वह फिर चौदह वर्ष बाद खुला। दरवाजे में घुसते ही दो सार्जेंटों ने हाथ पकड़ कर इन्हें खड़े रहने को कहा। ये खड़े हो गये। इतने में आसपास के पहरेदार बोले "बारी साहब आता हैं।" साहब वहाँ का बन्दीपाल (जेलर) था सौर वह अपनी निष्ठुरता के लिये प्रसिद्ध था। उसका नाम लेकर पहरेदार इनकी

परीक्षा लेना चाहते थे कि इन पर इसका प्रभाव पड़ता है, या नहीं परन्तु ये स्थिरचित्त होकर खड़े रहे। जब इधर उधर दृष्टि घुमाई तो पास ही एक मुस्टण्डा गोरा हाथ में मोटी सी लकड़ी लिये खड़ा दिखाई दिया। यह इनकी ओर एक टक ही देख रहा था। ये ही बारी साहब थे। सावरकर की निर्भयता देख ये छिप कर इनकी ओर देख रहे थे। सावरकर की दृष्टि पड़ते ही ये देखा अनदेखा कर सार्जेण्ट से बोले "छोड़ दो इसे, यह कोई शेर नहीं है।" इसके बाद इनकी ओर मोटी लकड़ी कर बोले 'मार्सेल्ज़ से भागने वाले क्या तुम ही हो ?' इस अदण्डतापूर्ण प्रश्न को सुन कर ये बोले 'हाँ, फिर ?'" यह सुन कर बारी साहब का स्वर ढीला पड़ गया और जिज्ञासा के साथ पूछने लगे "आप ने ऐसा क्यों किया ?" इन्होंने उत्तर दिया "इसके अनेक कारण थे। उनमें से एक यह भी था कि सब झंझटों से छुटकारा मिल जाये।" इस पर वे बोले "इससे तो आप और भी झंझटों में फस गये।" इन्होंने कहा "आपका कहना ठीक है, परन्तु विशेष अवस्थाओं के कारण इन झंझटों में फंसना मुझे अपना कर्त्तव्य जान पड़ा अब तो बारी साहब खुले मन से बोलते हुए कहने लगे "देखिये, मैं अङ्गरेज नहीं, आयरिश हूँ। मैने भी अंग्रेजों के हाथ से आयर्लैंड को मुक्त करने के लिये युद्ध किया है, परन्तु अब मेरा मत पलट गया है। मैं आपसे मित्रता के नाते कहता हूँ कि आप अभी युवक हैं और मैं आपसे अवस्था में कई वर्ष बड़ा हूँ।" ये बीच में ही

बोल उठे "क्या इसी कारण आपके विचार बदल गये हैं। बुद्धि तो न बढ़ी पर उत्साह कम हो गया है।" इस पर बारी साहब घबरा कर बोले "आप हैं बैरिस्टर और मैं हूँ अशिक्षित जेलर।" इससे आप मेरे कहे को तुच्छ न समझें। हत्या और रक्तपात से कभी स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती।" ये बोले "ठीक है, परन्तु यह बात आप पहले आयर्लैंड के सिनफिन वालों को क्यों नहीं सिखाते? फिर आपसे यह किसने कहा कि मैं हत्या का पक्षपाती हूँ।" इस पर बारी साहब विषय पलट कर बोले "देखो, सुपरिन्टेन्डेंट आता होगा। सच देखा जाये तो राजनीतिक विषय पर मुझे आपसे बात ही न करनी चाहिये थी, क्योंकि ऐसा करना यहाँ नियम विरुद्ध है। मुझे आपसे इतना ही कहना है कि बन्दीघर के नियमों का पालन कीजिये। यदि आप यहाँ से भागेंगे तो बड़ी मुसीबत में पड़ जायेंगे। चारों ओर जङ्गली लोग रहते हैं। इनके हत्ते चढ़ गये तो ककड़ी की तरह खा जायेंगे।" ये बोले "अजी, यह बात तो मैं भी जानता हूँ कि पोर्टब्लेयर मार्सेल्ज़ नहीं है।" अन्त में बारी साहब बोले "ठीक है, तो अब मेरी आज्ञा मानिये। मैं आपके बड़े काम आऊँगा। हाँ, जमादार! इन्हें साथ क्रमाँक वाले मकान के ऊपर के भाग की कोठरी में बंद कर दो।" इन्हें कोठरी में बंद कर दिया गया। आसपास की कोठरीयाँ पहले ही जान-बूझ कर खाली करा दी गई थीं जिससे ये किसी से बातचीत न कर सकें। तीन बलूची पठान पहरे पर रक्खे गये। ये लोग बंदियों में

सबसे कठोर थे। इसी कारण इनका स्थान सरकार की दृष्टि में बहुत ऊँचा था। राजबन्दी सभी हिन्दू थे। अतः उन्हें कष्ट देने के लिये जानबूझ कर मुसलमान पहरेदार नियुक्त किये जाते थे। अधिकारियों को भय था कि यदि हिन्दू वार्डर रक्खे गये तो उन्हें इनसे सहानुभूति उत्पन्न हो जायेगी। मुसलमान वार्डरों ने बचपन से ही यह सीखा था कि हिन्दू को कष्ट देने से पाप छूट जाते हैं। इस शिक्षा में अब अधिकारियों को भी सहायता मिलने से ये कुकर्मी लोग हिन्दू बन्दियों को मनमाना सताने लगे। इन मुसलमान वार्डरों में सिंधि और बलूची मुसलमान विशेष रूप से दुष्ट प्रकृति के थे। इनका हृदय हिन्दुद्वेष से परिपूर्ण था। ये लोग मराठी, बंगाली, पंजाबी आदि मुसलमानों को जो इनके समान क्रूर न थे, उन्हें 'आधे काफ़िर' के नाम से पुकारते थे। इस प्रकार सदा अपनी निन्दा सुन वे भी इनका अनुकरण करने लगे थे। इन दुष्ट वार्डरों के हाथों से अपने हिन्दू बंदियों को बचाने का सावरकर सदा प्रयत्न करते थे। इसके लिये मुसलमान वार्डरों ने इन्हें मारने की धमकियाँ भी दीं, परन्तु इन्होंने इसकी कुछ चिन्ता न करके अपना प्रयत्न जारी रक्खा।

दूसरे दिन प्रातः कोठड़ी खुलने पर बारी साहब कुछ साथियों के साथ आये और बोले "लो! मुझे आप जेलर समझते होंगे, परन्तु मैं सच कहता हूँ कि मैं आपका मित्र हूँ। इसी लिये मैं आप से खुले मन से बातें करने आ जाता हूँ। मैंने सुना है कि आपने

१८५७ का नीचतापूर्ण इतिहास भी लिखा है।" इसके उत्तर में इन्होंने केवल इतना ही कहा "इस विषय की मैंने बहुत सी पुस्तकें अवश्य पढ़ी हैं।" बारी साहब फिर बोले "ऐसे दुष्टों की कथा पढ़ते आपको घृणा नहीं आई ? स्वयं मेरे पिता उस दंगे में पकड़ गये थे। उनसे मैंने सुना है कि उस अधम नाना साहब ने अंग्रेज़ स्त्रियों को महान् कष्ट दिये थे और उनके मुँह में...। वे ऐसे राक्षस थे।" इन्होंने पूछा "क्या यह बात आपके पिता ने अपनी आँखों से देखी थी। ?" बारी साहब बोले "नहीं, उन्होंने एक कर्नल से सुनी थी जिसने यह कृत्य लखनऊ में स्वयं देखा था।" सावरकर ने कहा "यह सर्वथा झूठ है। अङ्गरेज़ स्त्रीपुरुषों के पकड़े जाने के समय नाना साहब लखनऊ में न होकर कानपुर में थे।" इसे अनसुना कर बारी ने कहा "ऐसी सैंकड़ो घटनायें हुई हैं।" इन्होंने उत्तर दिया "तो उन सब का मूल्य भी उतना ही है जितना इस बात का।" इस पर बारी के साथियों में से एक ने कहा "आपको नाना साहब और तात्याँटोपी जैसे स्वार्थी लोगों से घृणा नहीं होती ?" सावरकर बोले "सुनिये, यह है बन्दीघर और मैं हूँ बंदी के रूप में। यहाँ ऐसी चर्चा करना कहाँ तक उचित है, यह आप जानते ही हैं। यदि इसका ठीक उत्तर चाहते हैं तो आपको यह स्थिर करना होगा कि इस समय दोनों का सम्बन्ध बन्दी-बन्दीपाल का न हो कर समानता का है।" इस पर बारी साहब बोले "अजी, मैंने तो पहले ही कह दिया है कि मैं मित्र के नाते आया हूँ और इसी

रूप में सामने खड़ा हूँ।" इस प्रकार आश्वासन पाकर सावरकर बोले "अपने राष्ट्रीय इतिहास का अपमान सहना मैं भीरुता समझता हूँ। सत्य कहने पर यदि मुझे दण्ड भी भुगतना पड़ा तो मुझे उसकी चिन्ता नहीं है। नानासाहब के विषय में कही जाने वाली दन्तकथाओं का निर्णय करने के लिये स्वयं अङ्गरेज़ों ने एक सरकारी कमीशन नियुक्त किया था। इसने सिद्ध किया था कि अङ्गरेज़ स्त्रियों पर नैतिक अत्याचार करने की कथायें असत्य और अतिरंजित हैं। आप नाना साहब और तात्याँटोपी को स्वार्थी बताते हैं।" बारी का साथी बात काट कर बोला "मेरा तो दृढ़ मत है कि नाना साहब को राज्य की और तात्याँटोपी को बड़प्पन की इच्छा थी।" इन्होंने उत्तर दिया "आपका कहना ठीक है पर साथ ही यह कहना भी ठीक है कि विक्टर इमैन्युअल इटली का राजा होना चाहता था, वाशिंगटन अमेरिका का प्रैजीडैंट और गेरिवाल्डी बड़प्पन के लिये मरता था' किन्तु वस्तुतः सब के कार्यों का उद्देश्य राष्ट्र का उद्धार करना था। आप नाना साहब द्वारा अंग्रेज़ स्त्री पर किये गये अात्याचार की बात कहते हैं किन्तु अंग्रेज सेनापतियों ने एक की जगह दस-दस, बारह-बारह हिन्दुस्थानी स्त्रियों का वध केवल इसलिये किया था कि क्रान्तिकारी भयभीत होकर भाग जायें। क्या उनको भी आप कभी दोष देते हैं? इनकी तो इंग्लैंड में मूर्त्तियां स्थापित कर प्रतिष्ठा बढ़ाई गई है। कर्नल नील ने अपनी दैनिक डायरी में लिखा है कि

अंग जो राष्ट्र का कार्यांश करने के लिये ऐसा करना मेरा कर्त्तव्य था। यदि क्रान्तिकारियों के काम का भी इन्हीं शब्दों से समर्थन किया जाये तो कैसे अनुचित हो सकता है?" इस पर बारी साहब इनका स्वास्थ्य पूछ कर चले गये।

कोठड़ी में रहते सात दिन बीत गये थे। ये अपने कमरे में शांत बैठे थे। इतने में एक छोटा सा पत्थर छड़ों में से हो कर कोठरी में आ पहुँचा। पत्थर के साथ एक कागज़ बन्धा था। इसे खोल कर पढ़ा तो पता चला कि यह पत्र एक बंगाली बन्दी ने भेजा था। इसमें लिखा था कि कुछ राजबन्दी कष्टों से घबरा कर सरकार से मिल गये हैं। ये लोग यातनाओं से बचने के लिये न केवल हमारी गुप्त बातें ही अधिकारियों से कह रहे हैं, अपितु उन लोगों के नाम भी प्रकाश में ला रहे हैं जो अभी तक पकड़े नहीं गये हैं। इस पत्र में कुछ व्यक्तियों के नाम भी लिखे हुए थे जिनसे सावधान रहने की इन्हें सूचना दी गई थी। कुछ समय पश्चात् इन विश्वासघाती राजबंदियों ने अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिये सावरकर की झूठी सच्ची बातें पहुँचाने की भी सुजनता दिखाई। इससे इन्हें लाभ भी हुआ। कोल्हू चलाने के भयंकर काम से इनका छुटकारा हो गया। जो-जो बन्दी इनकी चुगली खाता, अधिकारियों का प्यारा बन जाता। इस कारण इनकी चुगली खाना भी वहाँ प्रतिष्ठित धन्धा ही बन गया था।

राजबन्दी पहले तो नारियल कूटा करते थे, परन्तु कुछ मास बीतने पर कलकत्ते का एक पुलिस अधिकारी राजबन्दियों की दशा देखने अन्दमान गया। वहां इन्हें एक साथ छिलका कूटते देख इसे बड़ा दुःख हुआ। इसने अधिकारियों को समझाया कि ये लोग छूटे हुए बदमाश हैं। अतः इनके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये जिससे इनकी अक्ल ठिकाने आ जाये और ये राजकीय आन्दोलन करना भूल जायें। पुलिस अधिकारी के इस उपदेश से युग बदल गया और सब राजबन्दी अलग-अलग कोठड़ियों में बन्द कर दिये गए। आपस में एक अक्षर बोलने पर भी हथकड़ी, बेड़ी आदि के कठोर दण्ड आरम्भ हो गये। अंगुली निर्देश व कुशल प्रश्न करने के कारण हाथ में हथकड़ियां डाल सात दिन तक खड़े रहने का भीषण दण्ड होने लगा। छिलका कूटने की जगह कोल्हू चलाने का काम जो बन्दीगृह में सबसे कठिन समझा जाता था, इनसे लिया जाने लगा। बिचारे सुकुमार और सुरक्षित बन्दी जिनकी अवस्था बीस वर्ष के लगभग थी इस भयङ्कर काम को कैसे कर सकते थे? कोल्हू चलाते-चलाते इनका दम फूल जाता था। प्रायः सभी को चक्कर आने के कारण बैठ जाना पड़ता था। इन्हें बैठा देख कर जमादार चिल्लाने लगता "बैठो मत, काम करो। शाम तक तेल पूरा करना होगा। नहीं तो पीटे जाओगे और जो सजा होगी सो अलग होगी।" जो बन्दी सन्ध्या तक पूरा तेल नहीं निकाल पाता था उसकी लातों

कोटों और घूंसों से बड़ी दुर्गति की जाती थी। यदि किसी दिन नारियल गीले निकले और सन्ध्या तक किसी का तेल पूरा न हुआ तो बारी साहब एक और जुगत लगाते थे। शाम होते ही वे बन्दी घर में आ घुसते थे और धमका कर कहते थे "जो तीस पौंड तेल पूरा न करेगा उसे सन्ध्या का भोजन न मिलेगा।" पांच छः बजे बन्दीघर का अन्य सब काम तो बन्द हो जाता था और उसके बंद हो जाने का प्रतीवृत्त (रिपोर्ट) भी तय्यार कर दिया जाता था, परन्तु राजबंदियों से तेल पूरा कराने के लिये बारी साहब कुर्सी पर डट कर बैठ जाते थे। नियमविरुद्ध होने पर भी सात-सात, आठ-आठ और कभी-कभी नौ बजे तक तेल का कोल्हू बराबर चलता रहता था। सबेरे छः बजे के जुते हुए बन्दी बीच में किसी प्रकार एक बार पेट में अन्न डाल कर रात के नौ बजे तक निरन्तर कोल्हू चलाते रहते थे। इस पर भी आते जाते सिपाही लातों और घूंसों द्वारा अपनी खाज मिटाते रहते थे। इस दशा में यदि कोई राजबन्दी बीमार पड़ा तो यही समझा जाता था कि बीमारी का ढोंग कर रहा है। १०१ अंश ज्वर होने पर ही अधिकारी लोग ज्वर समझते थे। इसके कम होने पर वह ढोंग की कोठी मानी जाती थी। इतने पर भी उसे चिकित्सालय न भेज कर कोठरी में बन्द कर दिया जाता था। चोर डाकू, और बदमाश तो पोर्टब्लेयर के नीतिशास्त्र के अनुसार साधारण पीड़ा होने पर भी रुग्णालय भेज दिये जाते थे, परन्तु राजबन्दी १०१

अंश का ज्वर होने पर भी बन्द कोठड़ियों में तड़पाये जाते थे। ऐसे कष्टभोगी बन्दियों में गणेश सावरकर प्रमुख थे। इन्हें घर पर अधकपाली की पीड़ा थी। बंदीघर में जाकर यह और बढ़ गई, फिर कोल्हू चलाने से तो इसने भीषण ही रूप धारण कर लिया। ज्यों-ज्यों कोल्हू चलाया जाता था त्यों-त्यों सिर दर्द बढ़ता जाता था। यदि कभी दर्द के कारण हाथ ढीला पड़ा तो जमादार उद्दण्डता से चिल्लाता था "कोल्हू चलाओ कोल्हू, हम और कुछ नहीं जानते।" यदि इस समय कोई अधिकारी आता और उसे कहा जाता कि माथे में पीड़ा हो रही है तो वह कह देता "इस प्रश्न का सम्बन्ध मुझ से नहीं है। डाक्टर से जाकर कहो" और डाक्टर साहब तापमापक (थर्मामीटर) लगाकर केवल शरीर की गर्मी ही देखते थे। शिरोवेदना की जानकारी से उन्हें क्या सम्बंध था। ऐसी अवस्था में यही कहना ठीक समझा जाता था कि बंदी झूठा है। राजबंदी हुआ तो निस्संदेह झूठा है और यदि गणेश सावरकर हुए तो उन के झूठे होने में कोई बात ही पूछने की नहीं है। डाक्टर यह भली भाँति जानता था कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह सर्वथा अन्याय है, पर बारी के डर से यह कुछ नहीं कर सकता था। वह इसे आते जाते जताता रहता था "देखो डाक्टर! तुम हिंदू हो और ये राजबन्दी भी हिन्दू हैं। यदि तुमने इनका पक्ष लिया तो ये एक दिन तुम्हें भी गड्ढे में पटके बिना न रहेंगे।" अन्य बंदी जो दस बार जेल काट चुके थे,

यही नहीं, जो जेल तोड़ कर भाग भी चुके थे वे आनन्द से अपनी बीमारी दूर करा सकते थे। उनके विषय में, बारी साहब डाक्टर से कुछ न कहते थे, परन्तु राजबन्दियों का चिकित्सालय में जाना प्राय: बन्द ही हो गया था।

अन्दमान में राजबन्दियों को कामकाज, अन्नवस्त्र, मारपीट आदि के जो महान् कष्ट दिए जाते थे वे तो दिये ही जाते थे, किंतु एक कष्ट बहुत असह्य और प्रकृतिविरुद्ध था। यह कष्ट इन्हें तब होता था जब ये मलमूत्र के रोकने पर विवश किये जाते थे। बारी के धर्मशास्त्र में प्रातः, दोपहर और संध्या—ये तीन समय छोड़ कर अन्य समय मलमूत्रोत्सर्ग के लिये जाना भयङ्कर अपराध था। शाम के छः बजे बंदीघर के द्वार बंद हो जाते थे और फिर प्रातः छः बजे खुलते थे। इस बीच में लघुशङ्का के लिये तो मटका दे दिया जाता था, परन्तु शौच जाना अत्यंत कठिन था। यदि किसी को आवश्यकता हुई तो वह भूमि पर ही टट्टी कर देता था और रात भर उसे सिरहाने रख कर सोना पड़ता था। प्रातः उठने पर जब बारी साहब को पता चलता तो वे सोटा पटक गाली देते हुए कहते "साले! तूने रात में टट्टी की ही क्यों? और फिर रात में टट्टी लगी, वह क्यों लगी?" बन्दी पर टट्टी फिर कर कोठड़ी गंदी करने के अभियोग में मामला चलाया जाता और दण्डस्वरूप उसे अपना मैला स्वयं उठाना पड़ता अथवा हथकड़ियां पहन तीन चार दिन तक लटके

रहना पड़ता था। उस अवस्था में मूत्रोत्सर्ग की भी आज्ञा न होती थी, मलोत्सर्ग की तो बात ही दूर थी। एक बार इनके बड़े भाई गणेश को इसी प्रकार सात दिन तक लटकाया गया था। तब उन्हें खड़े ही खड़े मलमूत्रोत्सर्ग करना पड़ा था। देहधर्म की यह नैसर्गिक आवश्यकता की पूर्ति भी अन्दमान के बंदीघर में विलासप्रियता समझी जाती थी। काम तो लोग चौपायों से भी लेते हैं और उन्हें गाड़ी आदि में जोत भी देते हैं, पर मलमूत्रोत्सर्ग के लिये उन पर रुकावट नहीं डाली जाती। जो स्वतंत्रता मनुष्य पशुओं से भी छीनना नहीं चाहता उससे बारी साहब ने इन राजबंदियों को वंचित कर रक्खा था। पशुओं से भी बुरी इन मनुष्यों की दशा की गई थी। अन्दमान के इस नीतिशास्त्र को बदलने के लिये कमिश्नर तक प्रार्थनापत्र भेजे गए, परन्तु बारी ने सभी अधिकारियों को यह समझा दिया था कि "महाराज! ये सब के सब झूठे हैं। भला मैं कभी इस प्रकार की पीड़ा देने वाला हूँ?" इस पर कमिश्नर ने बन्दियों को ही डांट कर कहा "भविष्य में यदि इस प्रकार झूठे अभियोग लगाये, तो याद रक्खो, दण्ड भुगतना पड़ेगा।" अन्त में आन्दोलन कर यह समाचार भारत सरकार के गृहमन्त्रीके कानों तक पहुँचाने का यत्न किया गया। किसी कारण ये महानुभाव स्वयं ही अन्दमान जा पहुँचे। फिर क्या था, लोगों ने इनके सामने सारी स्थिति उपस्थित की। इस पर बारी साहब बोले "ये सब के सब झूठ बोलते हैं।"

यह सुन पञ्जाब के श्रीनन्दगोपाल नामक राजबंदी ने कहा "तनिक बन्दीघर की कोठड़ियों का निरीक्षण ही कर लीजिये। आपकी नाक ही हमारी ओर से साक्षी देगी।" तब तो गृहमन्त्री ने बारी साहब को एकान्त में बुलाकर डांटा "खबरदार! इस प्रकार की घटना फिर कभी न होने पावे।" उस समय से राजबन्दियों के इस कष्ट का अन्त हुआ।

राजबन्दियों के इन कष्टों की आजके ए, बी और स्पैशल श्रेणी में पलने वाले बन्दियों से तनिक तुलना कीजिये। उन्हें नैसर्गिक नियमपालन की भी आज्ञा न थी और इन्हें बिजली के पंखे, आधुनिक शौचालय, फल, मेवा, मक्खन, मांस, दूध आदि के प्रयोग का खुला अधिकार है। उन्हें पशुओं की तरह कोल्हू में जोता जाता था और इनकी परिचर्य्या के लिये भृत्यों का तांता लगा रहता है। उन्हे वर्ष में एक बार पत्र भेजने का अधिकार था। सम्बन्धियों से मिलना तो दूर एक भीत के अन्तर पर रहने वाले अपने सगे भाई को देखना भी भयंकर पाप था और इनका साप्ताहिक मिलन स्वतः सिद्ध अधिकार है। उन्हें लातों, घूंसों और डंडों से पीटना जेल अधिकारियों का आवश्यक नियम था और इनकी जेल अधिकारियों पर रोब रखना पारम्परिक परिपाटी बनी हुई है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि बन्दीघरों में ये सुगमतायें राजबन्दियो के असीम कष्टसहन से ही हुई, परन्तु इनके कारण देशानुराग आज जितना सस्ता हो गया है उतना ही उस समय मंहगा था।

उस समय 'स्वातंत्र्यलक्ष्मी की जय' बोलना और 'बन्देमातरम्' कहना भी राजद्रोह समझा जाता था और इसके अपराधी कठोर कारावास के भागी बनते थे। राजनीतिक विषयों पर आज जो हम स्वतंत्रता से बोल सकते हैं इस वाणी, इस विचारधारा और इस साहस के आदि प्रवर्त्तक ये राजबन्दी ही थे। जिनके अतुल साहस और त्याग के सम्मुख ब्रिटिश सरकार को भी हार माननी पड़ी, वे स्वदेश से निर्वासित ये राजबन्दी ही थे, जिनकी अकथनीय वीरता और प्रयत्नों से भारत की वैधानिक उन्नति हुई वे भारतीय जनता द्वारा उपेक्षित ये वनवासी राजबन्दी ही थे। उन्होंने अपने को जेल की भट्टियों में तपा-तपा कर, अन्दमान की उष्ण रेत में जला-जला कर और 'भारतीय बस्टाईल' के दुर्गन्धपूर्ण कोठड़ों में सड़-सड़ कर हमारे लिये यह स्वतंत्रता प्राप्त की है। उनके नाम, उनके काम और उनकी आकृतियाँ आज हम से सर्वथा अपरिचित हैं। वे हमारे लिये लड़े, पर हम उन्हें जानते तक नहीं। वे हमारे लिये मरे, पर हम उन्हें पहचानते तक नहीं वे हमें याद करते हुए सिधार गये, पर हम उन्हें याद तक नहीं करते।

गृहमंत्री के चले जाने पर बारी साहब बन्दियों पर प्रभाव जमाने के लिये राजदण्ड की नाईं अपना दण्ड जमीन पर पटक कर कहने लगे 'देखो वे साला लोग। सारी दुनियाँ का एक ही ईश्वर है जो आकाश में रहता है, परन्तु पोर्टब्लेयर के दो ईश्वर हैं।

एक आकाश में रहने वाला और दूसरा पृथ्वी पर। पृथ्वी पर जो पोर्टब्लेयर का ईश्वर रहता है वह मैं ही हूँ। आकाश का ईश्वर तुम्हें जब कभी फल देगा तब देगा, पर पोर्टब्लेयर का ईश्वर अभी के अभी फल देगा। इसलिये यहाँ खूब समझ कर काम करो। यदि तुम में से किसी ने ऊँचे अधिकारी के पास अथवा दिल्ली के लाट के पास भी मेरी बुराई की तो उसकी यहीं के यहीं खबर ले ली जावेगी।" ज्यों-ज्यों बारी का घमण्ड बढ़ता जाता था त्यों-त्यों बन्दियों के कष्ट भी बढ़ते जाते थे। कोल्हू के काम से तंग आकर राजबन्दियों ने हड़ताल कर दी और घोषित कर दिया कि हम मनुष्य हैं, अतः बैल का काम न करेंगे। फिर क्या था, दण्ड की भारमार आरम्भ हो गई। आठ दिन की हथकड़ी, बेड़ी और कोठड़ीबन्दी तो हुई ही, परन्तु कई नियमबाह्य दण्ड भी दिये गये। खाने को काँजी छोड़ कुछ नहीं दिया गया। जब इनका मनोबल अल्पाहार से दुर्बल न किया जा सका तो फिनाईल मिक्श्चर पिलाना आरम्भ किया। इससे सिर घूमने लगा और पेट में आग लगने लगी। ये सब यातनायें भी इन्होंने सह लीं। अन्ततः अधिकारी झुक कर कहने लगे "हम तुम्हें सदा कोल्हू का काम न देंगे। साधारण बन्दियों की तरह जेल से बाहर भी काम पर भेजा करेंगे।" इस घोषणा के अनुसार कुछ दिन बाद राजबन्दी जेल से बाहर कीचड़ भरने, बोझा ढोने, सड़क साफ करने और गाड़ियाँ खींचने के काम पर भेजे जाने लगे।

सावरकर को अभी तक कोल्हू का काम न दिया गया था। ये नारियल का छिलका कूटते थे। इसे कूटते हुए इनके हाथ जहाँतहाँ छिल गये थे, स्नायु पर सूजन आ गई थी और बड़ी पीड़ा होने लगी थी। दोनों हथेलियों पर फफोले हो गये थे और बराबर कूटते रहने से लहुलुहान हो गई थीं। जब सुपरिन्टैन्डैन्ट को दोनों लहूभरी हथेलियाँ दिखाई गईं तो वह बोला "ऐसा तो सभी को होता है।" विवश होकर छिलका कूटना ही पड़ा। उसमें से साफ धागे निकाल कर जब ये गड्डियाँ बना कर आध सेर धागे तोल कर बारी के हवाले करते थे तो वे हथेलियों के लहू से लाल हो जाती थीं, परन्तु बारी ने कभी भी इनके लाल होने का कारण नहीं पूछा। कुछ समय छिलका कूटने के बाद एक दिन सुपरिन्टैन्डैन्ट ने आकर कहा "छिलका कूट-कूट कर आपके हाथ कड़े पड़ ही गये होंगे। मैं समझता हूँ कि अब इससे कड़ा काम देने में कोई हर्ज़ नहीं है। चलो, तो कल से कोल्हू का काम करना।" बारी ने भी हंस कर कहा "अब आप ऊपर के दर्जे में चढ़ा दिये गये है।" दूसरे ही दिन इन्हें कोल्हू में जोत दिया गया। इसे चलाते हुए सिर मे चक्कर आने लगते, एक-एक जोड़ दुखने लगता, और पीड़ा इतनी तीव्र होती थी कि तख्त पर पड़ते ही ज्वर आ जाता था। सारी रात तड़पते बीतती थी। इस पर भी सारा दिन मेहनत करने पर तेल पूरा न हो पाता था। एक दिन जब इन्हे असह्य पीड़ा हो रही थी तो ये सोचने लगे "अन्तिम

कार्य क्यों नहीं कर डालता ? जिसके आधार से पोर्टब्लेयर के सैंकड़ों बन्दी मृत्युसागर पार कर गये, उस रस्सी के टुकड़े से फांसी लगा कर आज रात इस जीवन का अन्त कर दे ।" उस दिन इन्हें आत्महत्या अपनी ओर बराबर खींचती रही । फिर सोचा "इस प्रकार प्राणत्याग के लिये उतारू क्यों होता है ? इस प्रकार मरना कुत्ते की मौत मरना है । दण्ड देते समय जजों को दया आई थी और तुझे फांसी पर नहीं लटकाया था तो तू अपनी ओर से उनकी इच्छा पूर्ण क्यों करता है ? अपने पक्ष को हानि पहुंचा विफलता के साधन क्यों जुटाता है ? मरना ही है तो उस सेना का कुछ काम करके मर जिसका सैनिक होने का तू दावा करता है । गले में फांसी लगाकर प्राण मत दे ।" यह उपदेश मन को जंच गया और वह शान्त हो गया । कोल्हू चलाने का यह लाभ अवश्य हुआ कि अन्य राजबन्दियों से बातचीत करने का अवसर मिलने लगा । अधिकारियों की आंख बचाकर ये परस्पर सम्भाषण कर लेते थे । कुछ दिन कोल्हू का काम करने पर रस्सी बटने का काम दिया गया ।

इस समय बन्दियों को पुस्तकें मिलने लगी थीं, परन्तु उन्हें सायंकाल चार से छः बजे तक ही पढ़ने की आज्ञा थी । साथ ही कोई बन्दी अपनी पुस्तक दूसरे बन्दी को न दे सकता था । बारी साहब को बन्दियों का पढ़नालिखना बहुत बुरा लगता था । यदि वे किसी बन्दी के पास स्लेट का टुकड़ा व

पुस्तक देख लेते तो मारे क्रोध के चिल्लाने लगते थे "पुस्तकें पढ़ने से भारतीय नवयुवक पागल हो जाते हैं। पुस्तक पढ़ता है। साले ने इस स्थान को स्कूल समझ लिया है। बाप के घर क्यों नहीं पढ़ा? साला कहीं का! भेजो साले को कोल्हू में। छीनो साले की किताब।" इस बीच स्थानाभाव के कारण कुछ राजबन्दी इनके पास की कोठरियों में रक्खे गये थे। इस अवसर का लाभ उठाने के लिये इन्होंने उनमें शिक्षा का प्रचार आरम्भ किया। देवनागरी लिपि और हिन्दी लिखनी सिखाई जाने लगी। अन्दमान में रहते हुए इन्होंने शिक्षा का प्रचार इस तीव्र गति से किया कि एक बार वहां के बन्दीपाल को भी यह बात माननी पड़ी थी कि इनके प्रयत्न से वहां के तेहत्तर प्रतिशत बन्दी शिक्षित हुए हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। प्रारम्भ में यह काम गुप्तरूप से होता था, परन्तु जब अधिकारियों ने हड़तालों से तंग आकर एक साथ बैठने की आज्ञा दे दी, तो इन गुप्त सम्भाषणों ने रविवार की बैठक का रूप धारण कर लिया। रविवार को जब राजबन्दी जेल से बाहर घास काटने जाते थे तो सावरकर आठ दस साथियों को लेकर एक जगह बैठ जाते और उन्हें एक-एक विषय देकर उस पर उनसे भाषण दिलवाते थे। भाषणों के पश्चात् उस विषय पर चर्चा होती थी। यदि सम्भव हुआ तो अन्त में राष्ट्रीय गीत भी गाया जाता था।

कारण यह कि यह समय काम करने का होता था और इस कारण बारी के आने का सन्देह सदा बना रहता था। कभी पहरे वाला दौड़ा हुआ आता और "बारी आता है" कह कर सभा भंग कर देता था और कभी वह गालीगलौच कर कहता "ऐ बमवालो! बड़े बेशरम हो। फिर इकट्ठे हो गये तुम। जाओ, काटो घास, उठो, उठो।" इसके आते ही सब भाग खड़े होते थे। इस प्रकार उन्होंने अन्दमान में भी रविवार का सत्र अखण्डरूप से चालू रक्खा, उसे कभी खण्डित नहीं होने दिया। स्वातंत्र्याग्नि को निरन्तर प्रज्वलित रखने के कारण ही इनकी अग्नि आज तक जीवित रही है। कागज़ पैंसिल के अभाव ने ये साधारण कांटे द्वारा अथवा किसी प्रकार लोहे का एक आध कांटा लेकर दीवारों को कागज़ बना कर उन पर लिखा करते थे। थोड़े-थोड़े समय बाद कोटड़ी बदलनी पड़ती थी। इससे नई कोठड़ियों की नई दीवारों से भी कागज़ का काम ले लिया जाता था। प्रत्येक भीत अपनी जगह एक-एक ग्रन्थ का काम देती थी। कहीं स्पैंसर की आज्ञामें मीमांसा का युक्तिवाद, कहीं मिल की अर्थशास्त्रीय व्याख्यायें और कहीं रूसी इतिहास की प्रमुख घटनाओं का संग्रह खुदा हुआ था। इनसे राजबंदियों ने बहुत लाभ उठाया। ये उनके लिये मासिक पत्र का काम देती थीं। सावरकर अपने शब्दों में इसे "अन्दमान का नालज" कहा करते थे। इस प्रकार साप्ताहिक सभाओं, मौखिक व्याख्यानों और भित्तिग्रन्थों—इन तीन

चीजों द्वारा राजबंदियों की शिक्षा में उन्नत हुए, परन्तु इन भित्ति-मन्थों की आयु एक ही वर्ष होती थी, क्योंकि प्रति वर्ष चूना पोतने से ये ग्रन्थ भी लुप्त हो जाते थे। इससे यह लाभ अवश्य होता था कि पुराने कागज़ खराब होने से काम में न आ सकते थे। अतः पुताई हो जाने से नये कागज़ मिल जाते थे। भीतों पर क्या लिखा हुआ है, इस ओर बारी साहब का ध्यान कभी न जाता था। भीत की खरोंचा हुआ देख कर उस पर लिखा हुआ पढ़ने का कष्ट न कर ये बन्दी से केवल यही कह कर चले जाते थे कि सरकारी चीजें जानबूझ कर खराब करने के इरादे से ही भीतें खुरच डाली हैं और चूना गिरा कर इन्हें भद्दा कर दिया है।

यद्यपि सावरकर और इनके बड़े भाई एक ही बन्दीघर में बन्द थे, पर अब तक इनकी चार आंखें न हो पाई थीं। इन्होंने बारी और सुपरिन्टेन्डैन्ट से भी भाई से भेंट कराने के लिये कहा, परन्तु उन्होंने यही उत्तर दिया "आपके भाई यहां हैं व नहीं, यह भी हम आपको नहीं बता सकते।" जब वे समाचार भी देना न चाहते थे तो भेंट कराने की बात ही कहना व्यर्थ था। सावरकर जब इंग्लैंड गये थे तब गणेश इन्हें मुम्बई में विदा करने आये थे। उस के बाद से दोनों भाइयों में फिर भेंट न हुई थी। इस लिये अब इनका मन बड़े भाई के दर्शनों को व्याकुल हो रहा था। एक दिन संध्या समय जब ये अपने काम का हिसाब देने गये तो वहां इन्हें बड़े भाई के दर्शन हुए। इन्हें देखते ही गणेश

क्षण भर के लिये विमूढ़ हो गये। मूक दुःख के निष्कषरूप उनके मुख से यही एक उद्गार निकला "तात्या! तू यहां किस प्रकार आया?" इसके अनन्तर उन्होंने एक गुप्त चिट्ठी इन्हें भेजी। इसका विषय इस प्रकार था "तू बाहर रह कर अपना उद्देश्य पूर्ण कर लेगा, इस कल्पना से मन में ढारस बंध जाता था और मैं कालेपानी जैसे दण्ड को भी ध्यान में न लाता था। तू पेरिस होने पर भी इन लोगों के हाथ कैसे पड़ गया? अब कार्य क्या होगा? तेरी योग्यता मिट्टी में मिल जावेगी! प्रत्यक्ष देख कर भी मुझे विश्वास नहीं होता। हाय! हाय! तू यहां कैसे आ गया?" इन्होंने उत्तर दिया "किसी नैपोलियन को सारा जन्म युद्ध करने पर भी रुग्णशय्या पर ही मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता है। किसी लक्ष्मीबाई को तलवार के एक ही घाव से देहत्याग करना पड़ता है और किसी शूर को पहिली ही झड़प में गोली का निशाना बनकर आत्मबलिदान के पुण्य का भागी होना पड़ता है। इस प्रकार देहत्याग से योग्यता की परीक्षा नहीं हुआ करती। इसकी परीक्षा सेना के अग्रभाग में अचल होकर जूझने से ही होती है। हम लोग इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। इस लिये हमें अपनी सांसारिक आशाओं को भस्म कर उनकी राख शरीर पर पोत लेने से इस कारागार में भी धन्यता प्राप्त हो रही है। हमारे जीवन का अब: यही ध्येय है कि आने वाले कष्टों को वीरता से झेलें।" छोटे भाई के इस धैर्यद सदेश को पढ़ कर उनका दुःख जाता रहा।

अब राजबन्दियों ने सोचा कि यदि हमें अन्दमान की असह्य पीड़ाओं से छुटकारा पाकर भारत में जीवित पहुँचना है तो अपनी अवस्था का सच्चा चित्र जिस प्रकार सम्भव हो भारतीय पत्रों में प्रसिद्ध कर भारत सरकार के कानों तक पहुँचाया जाये। अंदमानी अधिकारी राजबंदियों से स्पष्ट कहते थे "हम जो तुम्हारे साथ कठोर व्यवहार करते है। उसमें हमारा कुछ दोष नहीं है। भारत सरकार की ही यह आज्ञा है। अतः हम इसके लिये विवश हैं।" इस कथन की सत्यता जानने के लिये भी यह आवश्यक था कि वहां की अवस्था जिस तरह भी बन पड़े भारत में प्रसिद्ध की जाये। इसके लिये राजद्रोह के अभियोग मे दस वर्ष के कालेपानी का दण्ड पाये संयुक्तप्रान्त निवासी श्री होतीलाल ने तीन स्ताम्भ (कालम) लम्बी चिट्ठी तय्यार की। उस पर उन्होंने केवल अपने हस्ताक्षर ही नहीं किये, अपितु अपनी कोठड़ी का क्रमाक भी लिख दिया। बाहर काम पर जाने वाले किसी बन्दी द्वारा यह पत्र जेल से बाहर पहुँचाया गया और एक सरकारी विश्वासपात्र प्रवासी की जेब मे लुकती-छिपती यह चिट्ठी कलकत्ते में उतर कर श्रीसुरेन्द्र के हाथ जा पहुँची। इस निर्भीक सम्पादक ने उन दिनों जब कि बड़े-बड़े महारथी भी क्रान्तिकारियों का नाम लेते थर-थर कापते थे, इसे 'बंगाली' पत्र मे प्रकाशित कर दिया और इस पर कुछ सम्पादकीय टिप्पणी भी कर दी। इसके बाद अन्य पत्रों ने भी इस सम्बन्ध में अपने मत प्रकट किये। कौंसिलों में भी

इस विषय की चर्चा हुई। इसी समय सावरकर के कोल्हू में जुतने का समाचार भारत में प्रसिद्ध हुआ। इसे किसी ने अमेरिका में फैला दिया। वहां 'अभिनव भारत' के सदस्यों ने इनके कोल्हू में जुतने का काल्पनिक चित्र देकर हस्तपत्रक (पैम्फलेट) छपवाये। इस आन्दोलन का भारत सरकार पर बहुत प्रभाव पड़ा और राजबन्दियों के छुटकारे का प्रश्न महत्त्वपूर्ण बन गया। १६११ में सम्राट् के राज्यारोहण की प्रसन्नता में सावरकर को छोड़ सब राजबन्दियों के दण्ड में कमी की गई। इस बात की चिन्ता न कर ये अन्दमान में न रहते हुए भी राजबंदियों के विषय में निरन्तर आन्दोलन करते रहे। इस समय तक इनका छोटा भाई नारायण जेल से मुक्त हो चुका था। उसे वर्ष में एक बार पत्र लिखने का इन्हें अवसर मिलता था। ये प्रतिवर्ष अपने भाई को इस ओर ध्यान देने की प्रेरणा करते थे। वार्षिक पत्र के अतिरिक्त अन्य तरीकों से भी ये आन्दोलन कर रहे थे। बन्दियों में कुछ लोग थोड़े वर्षों के लिए दण्डित हुए थे। जब वे स्वदेश लौटते थे तो उन्हें कवितायें, निबन्ध तथा सन्देश कण्ठस्त करा कर भेजे जाते थे। जो लोग स्मरण न कर सकते थे उन्हें लिख कर दिए जाते थे। साथ ही उन्हें पत्र छिपाने की विधि भी बता दी जाती थी। इस प्रकार इनकी कितनी ही कवितायें और लेख बन्दी होने पर भी छः सौ मील की दूरी पार कर भारत पहुँचे, छपे और जनता में वितीर्ण हुए।

१६१५ में भाई परमानन्द, श्री रामशरणदास, हृदयराम आदि लाहौर षड्यंत्र केस के राजबन्दी अन्दमान पहुँचे। यद्यपि अधिकारियों ने इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया कि ये लोग परस्पर न मिल सकें, तथापि अन्दमान के जीवनकाल में एक बार तो इनका मिलन हो ही गया। परस्पर सम्भाषण और मिलन न होने पर भी सावरकर और भाईजी में सिद्धांतों की एकता के कारण अगाध प्रेम बना रहा और वह आज तक वैसा ही बना हुआ है। १६२० में चौ० बुग्गा, महाशय रतनचन्द्र, बा० मदनसिंह आदि मार्शल ला के बन्दी अन्दमान पहुँचे। इनके आने पर सावरकर सङ्गठन और शिक्षा का कार्य्य और भी लगन से करने लगे। मुसलमान बन्दी हिन्दू बन्दियों को धर्मभ्रष्ट करने के लिये सदा प्रयत्न करते रहते थे। इन्होंने सैकड़ों हिन्दुओं को मुसलमानों के हथकण्डों से बचाया। धर्मभ्रष्ट हिंदुओं को शुद्ध करके उन्हें फिर से हिंदू बनाया। इसके लिये इन्हें कई बार मुस्लिम गुण्डों का सामना करना पड़ा। इनके बड़े भाई गणेश सावरकर को मुसलमान बन्दियों ने चोट भी पहुँचाई, परन्तु इन सब कठिनाइयों और धमकियों का सामना करते हुए इन्होंने अपना काम जारी रक्खा।

इस बीच क्रांतिकारियों के आंदोलन से तङ्ग आकर अंग्रेज सरकार ने भारत में 'मांटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार' लागू करने की घोषणा की। इन सुधारों के विषय में क्रांतिकारियों, विशेषतः

सावरकर के विचार जानने की सरकार को बहुत इच्छा थी, क्योंकि ये सुधार क्रांतिकारियों के आंदोलन के कारण ही किये जा रहे थे। अन्दमान के अधिकारियों द्वारा बार-बार दबाव डाले जाने पर अक्तूबर १६१७ को सावरकर ने इन शब्दों में अपने विचार सरकार को लिख कर भेजे "यदि अंग्रेज़ सरकार भारत में कोई नवीन सुधार लागू करना चाहती है और उन द्वारा हम क्रांतिकारियों को प्रसन्न करना चाहती है तो उसे तुरन्त ही सब क्रातिकारियों को बिना शर्त छोड़ देना चाहिये। यदि सचमुच ही भारत को कोई उत्तरदायित्त्वपूर्ण शासन दिया जा रहा है और उसे देते हुए भी ःांतिकारी कालेपानी में सड़ाये जाते हैं तो यह कार्य्य उस शासन सुधार की प्रगति को रोकने में गले में लटके हुए चक्की के पाट की तरह काम देगा। मेरे द्वारा कहे हुए 'उत्तरदायित्त्वपूर्ण शासन' शब्द का अभिप्राय है कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों का बहुमत रहे। यदि ऐसा शासन दिया जाता है और सब राजबन्दी, चाहे वे स्वदेश में हैं अथवा विदेश में निर्वासित हैं, बिना शर्त छोड़ दिये जाते हैं—ये दो बातें हम लोगों को सन्तुष्ट कर सकती है और तब हम अपने उद्देश्य को वैधानिक मार्ग से प्राप्त करने का उद्योग करेंगे। ऐसा कौन व्यक्ति है जो जान बूझकर आग से खेले और अपने हाथ पैर जलाये ? ऐसे देश में जहां कोई शासनविधान ही नहीं है वहां वैधानिक आन्दोलन की बात करना ही मज़ाक है,

परन्तु जहां इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशों की भाँति वैधानिक उपाय बर्ते जा सकते हैं वहां क्रांति की बात सोचना मूर्खता ही नहीं अपराध भी है। मुझे बताइये, उस देश में शान्ति किस प्रकार रह सकती है जहाँ एक भाई दूसरे भाई से पत्नी पति से, पुत्र पिता से और मित्र मित्र से बलपूर्वक पृथक् करके वियोग की मरुभूमि में प्रेम की प्यास से तड़प रहा है? उस देश में शान्ति कैसे रह सकती है जिसके सहस्रों लाल निर्वासन की अंधेरी कोठड़ियों में सड़ा सड़ा कर मारे जा रहे हैं? उस देश में शांति कैसे विराज सकती है जहां जीवनोन्नति प्रत्येक मार्ग पर 'इस मार्ग से जाने वाले दण्डित होंगे' ये सुल्तानी आज्ञायें लिखी हुई हैं? ....सब बन्दियों को छोड़ने का अभिप्राय यह नहीं है कि मैं जेलयातनाओं से व्याकुल हो उठा हूँ। इन सुधारों के मार्ग में यदि मैं ही एक कांटा हूँ और इस लिये यदि मुझे न छोड़ा गया तो भी मुझे कोई दुःख न होगा, बशर्तें कि सुधार सच्चे हृदय से लागू किये जायें।" युद्ध के पश्चात् १९२० से नवीन सुधार लागू किये गये और बहुत से राजबन्दी रिहा भी कर दिये गये, परन्तु दोनों 'सावरकरबन्धु' न तो छोड़े गये और न दण्ड में ही कमी की गई। इस पर भी इन्होंने अपनी विचारधारा में परिवर्त्तन नहीं किया! बारह वर्ष पूर्व जब ये क्रांतिकारी दल में काम करते थे उस दिन इनके जो विचार थे वही आज अन्दमान की काल कोठरी में भीषण यंत्रणायें सहते हुए भी स्थिर थे।

अपने विचारों को दबाने का इन्होंने कभी यत्न नहीं किया। एक बार जब वायसराय महोदय की कार्यकारिणी के एक सदस्य ने इन से यह कहा "यदि आपने भारत के पुराने राजाओं के विरुद्ध विद्रोह किया होता तो वे आपको हाथी के पैर तले कुचलवा देते।" इन्होंने तुरन्त उत्तर दिया "उस समय केवल भारत में ही नहीं, इंग्लैंड में भी और यहां तक कि संसार के प्रत्येक देश में विद्रोहियों की यही दशा होती थी। फिर ब्रिटिश लोग संसार भर में इस बात का शोर क्यों मचाते हैं कि जर्मन लोगों ने हमारे कैदियों को ताज़ा मक्खन और रोटी खाने को क्यों नहीं दी? यदि जर्मन लोग ब्रिटिश लोगों से यह कहें कि देखो, एक समय ऐसा भी था जब बन्दियों को जीवित ही जला कर मार्लोक थोर आदि युद्ध के देवताओं पर बलि चढ़ा दिया जाता था तो अंग्रेज़ों को कैसा लगेगा? वस्तुस्थिति यह है कि मनुष्यजाति की वर्तमान उन्नति सम्पूर्ण मानव जाति के प्रयत्नों का परिणाम है। इस लिये इसका लाभ भी सब को होना आवश्यक है।। 'असभ्ययुग' को ध्यान में रखते हुए यह ठीक है कि मेरे साथ 'कैनिबाल्स' की तरह व्यवहार नहीं किया गया, अपितु नियमानुकूल अभियोग चला कर ही दण्डित किया गया हूँ। इस कृत्य से यदि अंग्रेज़ सरकार प्रसन्न होना चाहती है तो होवे, परन्तु उसे यह नहीं भूलना चाहिये कि पुराने समय में जहां राजा लोग विद्रोहियों को जीवित जला देते थे वहां जब विद्रोहियों का बस चलता था तो वे भी राजाओं को

खाल खिचवा कर बदला ले लेते थे। इस लिये यदि अंग्रेज़ों ने मुझ से और मेरे साथियों से असभ्य लोगों का सा व्यवहार नहीं किया तो उन्हें भी विश्वास रखना चाहिये कि यदि समय ने पलटा खाया तो हम भी अंग्रेज़ विद्रोहियों से ऐसा ही व्यवहार करेंगे।"

आठ वर्ष तक तो अन्दमान में सावरकर का स्वास्थ्य ठीक रहा और ये सब शारीरिक यातनायें चुपचाप सहते रहे, परन्तु इनका निर्बल शरीर इन कष्टों को अब देर तक न सह सकता था। अतः इनका स्वास्थ्य निरन्तर गिरने लगा। संग्रहणी के रोग से शरीर अस्थिपिंजर हो गया। तोल ११६ पौंड से घट कर ६८ पौंड रह गया। इतने पर भी इन्हें चिकित्सालय न भेज कर कारागार की कोठरी में ही रक्खा गया। हां बन्दीघर का काम लेना अवश्य बन्द कर दिया गया। अपने भाई की यह दशा देख कर इनके छोटे भाई नारायण अपने भाइयों से मिलने अन्दमान गये। दण्डित होने के पश्चात यह प्रथम ही अवसर था जब तीनों भाई परस्पर मिले थे। इस मिलन को देख कर वनवासस्थिति रामलक्ष्मण से भरत का मिलन स्मरण हो आता है। इस समय इन्हें चिकित्सालय में प्रविष्ट किया गया और वहां का भोजन भी मिलने लगा। नारायण के लौटने पर कुछ दिन तक तो इनका स्वास्थ्य अच्छा रहा, परन्तु जलवायु की विषमता के कारण वह फिर बिगड़ने लगा। यहां तक कि तोल केवल ६५ पौंड रह गया। १६१६ से १६२१ तक ये रोगशय्या पर ही पड़े रहे। इस अवस्थामें

अपनी मृत्यु निकट देखकर इन्होंने मृत्यु का आवाहन करते हुए 'मरणोन्मुख शय्येवर:' शीर्षक से एक कविता ही रच डाली। इधर अन्दमान में इनकी यह दशा थी उधर कुटुम्ब की दशा और भी खराब थी। जिस समय तीनों 'सावरकर बन्धु' बन्दीगृह में थे उस समय इनके कुटुम्ब की सहायता करना सरकार दृष्टि में भयकूर अपराध था। इनके श्वसुर चिपलूणकर जिनकी दीवानगिरी सावरकर के सम्बन्धि होने के कारण ही छीनी गई थी, समस्त आपत्तियों का सामना कर अपनी कन्या का प्रतिपालन करते रहे, परन्तु गणेश सावरकर की पत्नी को बहुत कष्ट उठाने पड़े। नासिक निवासियों को इन्हें ठहरने को जगह देते हुए भी भय लगता था। इनके सम्बन्धियों ने भी इनसे सम्बंध त्याग दिया। मकान न मिलने से इन्हें मन्दिर में ही रहना पड़ा। हां, फ्रांस से मैडम कामा कुछ धन अवश्य भेजती थीं। इसलिये ये भोजनचिंता से मुक्त थीं। छोटे भाई नारायण के जेल से छूटने पर इनके ये कष्ट तो जाते रहे, किन्तु पति के कष्टों का स्मरण कर ये दिन प्रतिदिन सूखती गईं। इन्होंने अपने पति से मिलना भी चाहा, पर सरकार से आज्ञा न मिली। जिस दिन नारायण को अपने दोनों भाइयों से उनकी दोनों पत्नियां सहित मिलने की आज्ञा मिली, उसी दिन गणेश सावरकर की पत्नी का देहान्त हो गया। भगवदिच्छा बलवती है। कोई क्या कर सकता है?

षोडश पर्व

अन्दमान से छुटकारा

यद्यपि सावरकर अपने देश से छः सौ मील दूर अन्दमान की कोठड़ी में बन्द थे,तथापि भारतियों ने अपने वीर नेताको एक दिन के लिये भी नहीं भुलाया। इनकी स्मृति पवित्र वस्तु की तरह सुरक्षित रक्खी गई और इनके साहसिक कृत्य पौराणिक कथाओं की न्याईं सर्वत्र कहे जाने लगे। सार्वजनिक सभाओं और पत्र-पत्रिकाओं द्वारा इन्हें मुक्त कराने के लिये प्रस्ताव पास होते रहे, देश भर में 'सावरकर सप्ताह' मनाया गया, अन्दमान के कष्टों को वर्णन कर इनके छुटकारे के लिये सत्तर हज़ार हस्ताक्षरों से अंकित एक विशाल प्रार्थनापत्र सरकार के पास भेजा गया। इतना बड़ा प्रार्थनापत्र भारतीय जनता ने आज तक सरकार के पास नहीं भेजा। इस पर जहां देश के बड़े नेता से लेकर साधारण नागरिक तक ने हस्ताक्षर किये थे वहां एक व्यक्ति ऐसा भी था जिसने इस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार किया था। इस व्यक्ति का नाम विश्ववन्द्य महात्मा गांधी है। सावरकर को छुड़ाने के लिये इधर जनता का यह आन्दोलन चल रहा था, उधर १६२० में भाई परमानन्द बिना शर्त अन्दमा. से छोड़ दिये गये। १६२१ के अप्रैल

मास में ये लाहौर पहुंचे। वहां उन दिनों ब्रिटिश पार्लिआमेंट के प्रमुख सदस्य वैजवुड महोदय ला० लाजपतिराय के यहां ठहरे हुए थे। लाला जी ने भाई जी के साथ इनका परिचय कराया। बात-चीत करते हुए भाई जी अन्दमान की चर्चा की और सावरकर के स्वास्थ्य का वर्णन कर उन्हे तुरन्त छोड़ने का आग्रह किया। वैजवुड महोदय ने भाई जी को विश्वास दिलाया कि मैं इसके लिये शक्ति भर यत्न करूंगा। इंग्लैंड लौटते हुए इन्होंने मुम्बई में वहां के गवर्नर से भेंट की, परन्तु इनका सेवाकाल पूरा हो रहा था। अतः लन्दन पहुँच कर वैजवुड साहब मुम्बई के नये गवर्नर से मिले। इन्होंने गवर्नर बनने के कुछ ही समय बाद आज्ञा दी कि 'सावरकर बन्धु' अन्दमान से भारत वापिस भेजे जाये, क्योंकि वहां का जलवायु इनके स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। अगस्त १६४० में 'सावरकर बन्धु' अन्दमान से कलकत्ते लाये गये। चार दिन तक दोनों भाई एक साथ रहे, पर शीघ्र ही वियुक्त होने के लिये। गणेश सावरकर तो अलिपुर जेल मे रक्खे गये और विनायक सावरकर रत्नागिरि जेल भेज दिये गये। रत्नागिरि जाते हुए मार्ग में केवल एक दो स्थानों पर ही इन्हें उतरने की आज्ञा दी गई। नासिक उनमें से एक था। २८ अगस्त ५६२४ को नासिक निवासियों ने अपने वीर नेता का भव्य स्वागत किया। नासिक में सावरकर की शोभायात्रा, विजययात्रा के समान थी। महाराष्ट्र भर के सहस्रों व्यक्ति इनके दर्शनार्थ पहुँचे थे। नासिक से एक मील दूर

पञ्चवटी के राम मन्दिर में डा० मुंजे के सभापतित्त्व में इनका सम्मान समारम्भ बड़े समारोह से किया गया। देश के विविध भागों से आये हुए लोगों ने इनका स्वागत किया। शङ्कराचार्य कुर्तकोटी ने स्वागतपत्र तथा एक दुशाला भेजा। श्रीयुत् नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने जनता की ओर से एक अभिनन्दनपत्र तथा बारह हज़ार रुपये की थैली भेंट की। नेताओं के भाषणों के पश्चात् सावरकर स्वागत का उत्तर देने खड़े हुए। इन्होंने कहा "......अन्दमान की काल कोठड़ी में रहते हुए भी मैं सन्तुष्ट था, क्योंकि मैंने सब कुछ निरपेक्ष बुद्धि से किया था। इस सम्मान की बात मेरे मन में कभी नहीं आई। यहां बहुत से युवक बैठे हुए हैं। इस सम्मान को देख कर वे यह न समझें कि समाजसेवा सम्मान के लिये करनी चाहिये। जिन्हें हम 'हुतात्मा' कहते हैं उनकी ओर देखिये, ईसामसीह सम्मान की ओर न देख कर सूली की ओर देखते थे। बन्दी बनने के बाद राज्याभिषेक का स्वप्न भी शिवाजी ने कभी न देखा था कार्यारम्भ करते हुए ही आप सोच लीजिए कि हमारा मार्ग कांटों से भरा हुआ है। इस समय मुझे स्पार्टा के एक वीर की कहानी स्मरण आ रही है। वह जब घायल होकर गिर पड़ा तो लोगों ने कहा "आपके कारण स्पार्टा की विजय हुई है। बताइये, आपका स्वागत किस प्रकार किया जाये?" उस वीर ने उत्तर दिया "मेरी समाधि पर लिख दो कि स्पार्टा के पास इससे बढ़ कर पुत्र विद्यमान हैं

और आने वाली सन्तानें भी बढ़िया होंगी।" मैं भी यही कहता हूँ कि मुझ से हज़ार गुणा तेजस्वी और वीर्य्यशाली वीर आज भी देश में हैं और आगे भी उत्पन्न होंगे।"

सप्तदश पर्व

—:o:—

रत्नागिरि में नज़रबन्दी

संग्रहालय की अद्भुत वस्तुओं की तरह सावरकर भी वर्षों तक ब्रिटिश बन्दीगृह की दर्शनीय वस्तु बने रहे। जिस प्रकार संग्रहालय की चीज़ों को छिपा कर रक्खा जाता है, उसी प्रकार इन्हें भी सत्ताईस वर्ष तक जनता से छिपा कर रक्खा जाता रहा पांच वर्ष तक तो ये रत्नागिरि जेल में बन्द रक्खे गए। इसके बाद जेल से हटा कर रत्नगिरि ज़िले में नज़रबन्द कर दिये गये। ज़िले भर में घूमने फिरने की स्वतंत्रता इन्हें दे दी गई। इसका लाभ उठा कर इन्होंने हिंदु संघटन का कार्य्य आरम्भ किया। यह कार्य्य इतनी लगन से किया गया कि नज़रबंदी के तेरह वर्षों का इतिहास हिंदुसंघटन का ही इतिहास है। सावरकर के इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप रत्नागिरि की हिंदुसभा संघटन की दृष्टि से भारत की सर्वप्रमुख हिंदुसभा बन गई। महाराष्ट्र के इस प्रदेश में छूआछूत उग्र रूप में फैली हुई थी। सावरकर ने इसी बुराई पर सर्वप्रथम कुठाराघात करने का निश्चय किया। इन्होंने जिले के विभिन्न स्थानों पर व्याख्यान दिये और धार्मिक सामाजिक तथा राजनीतिक—सभी दृष्टिकोणों से अछूतोद्धार की उपयोगिता समझायी। पढ़े लिखे लोग इनके साथ हो लिये।

कुछ एक ने तो इनके साथ काम करना भी आरम्भ कर दिया। अवकाशके दिन ये लोग दलितोंके घरोंपर जाते। उनके साथ सहभोज करते, उन्हें उपदेश देते और शिक्षित बनाने का यत्न करते थे। इस पारस्परिक मिलाप से दलितों में से अपने को हीन समझने की भावना जाती रही। इन्हीं की प्रेरणा पर श्रीमन्त भागोजी ने ढाई लाख रुपया व्यय करके रत्नागिरि में 'श्री पतितपावन अखिल हिन्दू मन्दिर' का निर्माण किया। इस में प्रत्येक हिन्दू चाहे वह किसी जाति का हो, पूजा कर सकता है। इस प्रकार सावरकर ने गाँधी जी के 'हरिजनआन्दोलन, से कई वर्ष पूर्व ही अछूतोद्धार का बीड़ा उठाया था। जिस प्रकार स्वदेशी, असहयोग आदि विविध विषयों में सावरकर, गाँधी जी के अग्रगामी हैं उसी प्रकार अछूतोद्धार में भी ये अग्रगामी रहे। इन के इस कार्य्य से उच्च जातीय हिन्दूओं का कोप भड़क उठा। उन्होंने इसका न केवल विरोध ही किया, अपितु इसमें रोड़े अटकाने का भी यत्न किया, परन्तु इनके साहस के सम्मुख विरोध हार मान कर बैठ गया।

ये केवल अछूतोद्धार से ही सन्तुष्ट न हुए। पादरियों और मुल्लाओं द्वारा भोले भाले हिन्दुओं को बहका कर किये जा रहे मतपरिवर्तन ने इन्हें शुद्धिआन्दोलन चलाने पर विवश किया। यहाँ रहते हुए इन्होंने अपने प्रयत्न से लगभग ३५० पथभ्रष्ट हिन्दुओं को फिर से हिन्दुधर्म में दीक्षित किया। इससे मुस्लिम जनता भड़क उठी। उन्होंने इन्हें मारने की धमकियाँ दीं।

एक बार तो उन्होंने आक्रमण कर इन्हें घायल भी कर दिया, किन्तु इनके साथियों ने उन्हें कानून और लाठी—दोनों द्वारा ऐसा पाठ पढ़ाया कि मौलानाओं के सारे हौसले ढीले पड़ गये और पादरी लोग तो रत्नागिरि ज़िला ही छोड़ कर भाग गये।

शुद्धि और संगठन के अतिरिक्त अखिल हिन्दुत्व की स्थापना के लिये भी इन्होंने यत्न किया। नेपाल के स्वतन्त्र हिन्दुराज्य की ओर हिन्दुओं का ध्यान आकर्षित करके दोनों देशों की सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक एकता पर बल दिया। नैपाल के नवीन महाराजा के राज्याभिषेक के समय रत्नागिरि हिन्दुसभा की ओर से उसे बधाई दी और हिन्दु-महासभा के आगामी अधिवेशन का प्रधान बनने की प्रेरणा की। महायुद्ध में ख्यातिप्राप्त गुरखावीर चन्द्रसिंह को रत्नागिरि हिन्दुसभा ने आमंत्रित किया और उसका राजकीय स्वागत किया। इन सब कार्य्यों से नैपाल और भारत को परस्पर समीप लाकर अखिल हिन्दुत्व की भावना को प्रोत्साहित किया।

सावरकर जहां एक उत्तम कवि, वक्ता, वीर, साहसी और सेनापति हैं वहां ये उच्चकोटि के साहित्यक भी हैं। नागरी लिपि में छपाई के कुछ दोष देख कर इसकी वर्णमाला में कुछ सुधार किया। ये सुधार इतने लोकप्रिय बने कि सहस्रों व्यक्ति इसे प्रयोग में लाने लगे और केसरी, नवप्रकाश आदि पत्र तो इसे वर्षों से अपना रहे हैं। वर्णमाला सुधार के पश्चात् भाषाशुद्धि की ओर

ध्यान दिया। मराठी भाषा में अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी आदि विदेशी शब्दों का बहिष्कार कर संस्कृतनिष्ठ मराठी का आन्दोलन चलाया। अपने लेखों से इन्होंने विदेशी शब्दों का सर्वथा बहिष्कार कर दिया। मराठी भाषा के उत्तम लेखक होने से जब हज़ारों लोगों ने उन लेखों को पढ़ा तो शुद्धिआन्दोलन प्रबलरूप धारन कर गया। वर्णमालासुधार और भाषाशुद्धि के अतिरिक्त इन्होंने अंग्रेज़ी और मराठी में अनेक ग्रन्थ भी लिखे। हिन्दु' शब्द विदेशी है अथवा देसी, यदि देसी है तो उसका क्या अर्थ है, यह विषय बहुत विवादास्दप था। 'हिन्दुत्त्व' पुस्तक लिख कर इन्होंने इसका पूरा समाधान किया। इस प्रकार 'हिन्दू' की व्याख्या करते हुए इन्होंने बताया "जो व्यक्ति सिन्धु नदी से सिन्धु (समुद्र) तक फैले हुए इस भारत देश को अपनी पुण्यभूमि और पितृभूमि मानता है, वह हिन्दू है।" यह व्याख्या इतनी उत्तम मानी गई कि आगे चल कर हिन्दुमहासभा ने इसे स्वीकृत कर लिया। इसी काल में इन्होंने अपनी जन्मकथा भी लिखी, पर उसे सरकार ने ज़ब्त कर लिया और वह आज तक ज़ब्त है। आन्दोलन करने पर कांग्रेस सरकार ने भी उस पर से प्रतिबंध नहीं उठाया। इनके रचे हुए सप्तर्षि, गोमान्तक, कमला आदि काव्यग्रन्थ मराठी साहित्य के अनुपम रत्न समझे जाते हैं। अहिंसा की नीति द्वारा भविष्य में भारत को क्या हानि होगी, इसका वर्णन करने वाला 'सन्यस्तखड्ग' और कालेपानी की

विस्तृत गाथा बताने वाली कादम्बरी 'कालेपानी'—ये दो ग्रन्थ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। उन दिनों केसरी, श्रद्धानन्द, किर्लोस्कर आदि पत्रों में प्रकाशित होने वाले इनके लेखों को जनता ने आज तक अमूल्य सम्पत्ति के रूप में सुरक्षित बनाया हुआ है।

अष्टादश पर्व

—:o:—

हिन्दुराष्ट्रपति के रूप में

१९३७ में चिरप्रतिक्षित नवीन शासनविधान भारत में लागू किया गया। इसके आधार पर प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं के लिये नवीन निर्वाचन हुआ। काँग्रेस ने सभी प्रान्तों में अपने प्रतिनिधि खड़े किये और घोषणा को कि हम लोग चुने जा कर नवीन विधान को नष्ट कर देंगे। हिन्दू जनता ने मत दे कर सात प्रान्तों में काँग्रेसी प्रतिनीधियों को भारी बहुमत से जिताया। अपने घोषणापत्र के अनुसार काँग्रेस ने आरम्भ में मंत्रीपद ग्रहण न करने का निश्चय किया। इस बीच क्षणिक मंत्रीमण्डली ने शासन किया। ऐसा ही एक मंत्रीमण्डल मुम्बई प्रान्त में बनाया गया। इस मंत्रीमण्डल में जमनादास मेहता भो एक मंत्री थे। मंत्रीत्त्व ग्रहण करते समय इन्होंने प्रधानमंत्री सम्मुख यह शर्त रक्खी कि शासनसूत्र हाथ में लेते ही सावरकर नज़रबन्दी से मुक्त कर दिये जायें। इस शर्त के अनुसार १० मई १९३७ को सावरकर मुक्त कर दिये गये। यह वही पवित्र दिन था जिस दिन १८५७ के वीरों ने अपनी माँ को बन्धमुक्त करने के लिये स्वाधीनतायुद्ध प्रारम्भ किया था। उस दिन चाहे भारत स्वतंत्र नहीं हो पाया, परन्तु दो जन्म का दण्ड पाये हुए स्वातंत्र्यवीर सावरकर

अवश्य स्वतन्त्र हो गये। इसका सम्पूर्ण श्रेय जमनादास मेहता को ही है। भगवान् राम के चरित में जो स्थान महाबलि हनुमान को प्राप्त है, सावरकर के इतिहास में वही स्थान जमनादास को प्राप्त होगा। जिस प्रकार हिन्दू जाति वज्राङ्गबलि हनुमान को युगों से स्मरण करती आ रही है, उसी प्रकार आने वाली संततियां निश्चय ही जमनादास को स्मरण करती रहेंगी।

सावरकर की मुक्ति से देश भर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो, मृतात्मायें जाग उठी हों। इस समाचार को पाते ही सभी राजनीतिक संस्थाओं के प्रतिनिधि इन का स्वागत करने गये। कांग्रेसी, समाजवादी, उग्रवादी—सभी अपनी-अपनी ध्वजायें लिए हाथों में श्रद्धा के हार बढ़ाये सावरकर का अभिनन्दन करने पहुँचे। वहीं एक ओर महासभा के प्रतिनिधि भी अपनी पताका और फूल लिये स्वागत की बाट जोह रहे थे। अब इनमें से इन्हें अपना मार्ग चुनना था। एक ओर सात प्रान्तों का शासनसूत्र चलाने वाली कांग्रेस का मान था, उसका सर्वोच्च सिंहासन इनके लिये रिक्त हो सकता था। अपनी योग्यता और त्याग के कारण नैपोलियन की भाँति ये आयु भर उसके प्रधान रह सकते थे, सैंतीस कोटि नरनारियों के कण्ठ इनके जय जयकार से गूंज सकते थे और देश भर में होने वाले भव्य स्वागत के सुन्दर दृश्य सामने खिंचे थे। दूसरी ओर विरोधी संस्थाओं के भीषण संघर्ष में किसी प्रकार घड़ियां गिन रही

हिन्दुमहासभा का प्रधानपद था, जिसमें किसी प्रकार का चाव, आकर्षण और लुभाव दिखाई न पड़ता था। इधर स्वागत, जय-घोष और मानपत्र के स्थान में अपने ही भाइयों द्वारा हिन्दू नेताओं की निकाली गई प्रेतयात्राओं, अपमान और भर्त्सना के भय वह दृश्य सामने खड़े थे। स्वजातियों से होने वाला बहिष्कार, विजातीयों से मिलने वाली धमकियां और सरकार की विषम नीति वस्तुस्थिति का यथार्थ चित्र खींच रही थी। जिस प्रकार भगवान् कृष्ण ने महाराज दुर्योधन के राजसी अन्न को त्याग कर महात्मा विदुर के घर का शाक ग्रहण किया था, उसी प्रकार सावरकर ने कांग्रेस के मान से मुंह मोड़ कर हिन्दुसभा के अपमान में ही स्वाभिमान पाया। इन्होंने कांग्रेस के 'ज़िन्दाबाद' को छोड़ कर हिन्दूसभा के 'मुर्दाबाद' में ही जीवन की झांकी देखी और कांग्रेस के आकर्षक प्रधानत्व का त्याग कर हिन्दुसभा के निरीह प्रधानत्व में एक अदृश्य आकर्षण देखा। जिस प्रकार नैपोलियन ने अपने से पूर्ववर्ती सम्राटों की परम्परा को तोड़ कर, पोप से राज्याभिषेक न करा कर अपने ही हाथों अपने सिर पर राजमुकुट रखते हुए कौंसिलर्स को सम्बोधन करते हुए कहा था "मैंने इस मुकुट को फ्रांस की धूलि में पड़ा हुआ पाया और अपनी तलवार की नोक से उठा कर अपने सिर पर रक्खा है।" उसी प्रकार सावरकर ने भी कांग्रेसी राष्ट्रीयता के पोप गांधी जी द्वारा देशभक्ति का प्रमाणपत्र न पाकर अपने ही उद्योग से भारत का

हृदय सम्राट बनने के लिये घोषित किया "मैं हिन्दुराष्ट्र का नवनिर्माण कर सच्ची राष्ट्रीयता का प्रसार करूंगा।" ११३७ के दिसम्बर मास में अहमदाबाद में होने वाले हिन्दुमहासभा के महाधिवेशन का प्रधानपन सावरकर को सौंपा गया। इस प्रकार इनकी सेवाओं का मान कर हिन्दुसभा ने विचारशील संसार को यह प्रमाणित कर दिया कि हिन्दुसभा सर्वोत्तम देशभक्तों की संस्था है।

शताब्दियों की पराधीनता और कांग्रेस के मिथ्या राष्ट्रवाद के कारण हिन्दू लोग अपने को हिन्दू कहने में लजाने लगे थे, मानों, हिन्दू चोर पिता का पुत्र हो। इस हीन भावना को निकालने के लिये इन्होंने अहमदाबाद में हिन्दुराष्ट्रपति के पद से घोषणा की "हिन्दू राजनीतिक संघर्ष में योग्यतम प्रमाणित हुए हैं। अतः हम कायरों की नहीं, अपितु बलवत्तम वीरों की सन्तान हैं। हम पर बड़ी बड़ी आपत्तियाँ आईं, परन्तु हम ने उन विषम परिस्थितियों में भी अपने को जीवित रक्खा है। जब-जब किसी विदेशी जाति ने हमें समाप्त करने का उद्योग किया इससे पूर्व कि वह हमें नष्ट कर पाती हमने ही उसका नाश कर दिया। विश्वविजेता सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया, परन्तु वह हमें न जीत सका। चन्द्रगुप्त मौर्य्य खड़ा हुआ और उसने सैल्युकस को पराजित कर ग्रीक लोगों पर अपनी शक्ति और संस्कृति की अमिट छाप बिठा दी। शताब्दी पश्चात हूण लोग बाढ़ की तरह आगे बढ़े

उन्होंने सारे योरुप और आधे एशिया को जीत लिया, विशाल रोमन साम्राज्य टूक-टूक कर दिया, परन्तु हमने दो सौ वर्ष तक निरन्तर जूझते हुए अन्त में विक्रमादित्य के नेतृत्त्व में हूणों को हरा डाला। शक लोग आये और उनकी भी यही गति हुई। शालिवाहन और यशोधर्मा की शक्तिशाली सेनाओं ने उनकी सेनायें काट डालीं। ग्रीक, शक, यूची, हूण, आदि हमारे शत्रु आज कहाँ हैं? उनका तो भारत से नाम ही मिट गया है। इस प्रकार शताब्दियाँ बीत गईं और मुसलमानों ने हमारे पर आक्रमण किया। वे विजयी हुए। उनके बड़े-बड़े बादशाहों ने वर्षों तक शासन किया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब चिर काल तक यही लोग शासन करेंगे। हिन्दू लोग पारस्परिक फूट होने से छः सौ वर्ष तक युद्धों में निरन्तर परास्त होते रहे। यहाँ तक कि हमें अपने स्वाभिमान को रखना भी कठिन प्रतीत होने लगा, परन्तु दिन आया जब उत्तर में सिक्खों ने, मध्य में राजपूतों ने और दक्षिण में मराठों ने मुग़ल साम्राज्य को छिन्नभिन्न कर सारे हिन्दुस्थान पर, दूर अटक के दुर्ग पर हिन्दू पताका फहरा दी। शिवाजी के प्रादुर्भाव से युद्ध के देवता ने सदा हमारा साथ दिया। सैंकड़ों युद्धों में हमने मुसलमानों को पछाड़ा। उनके बादशाहों, नवाबों, शाहों और सरदारों से कर प्राप्त किया। हिन्दुओं के सेनापति भाऊजी पेशवा ने दिल्ली जीत कर मुग़ल तख्त के भी टुकड़े कर दिये और ग्वालियर के शिंदे ने मुग़ल सम्राट् को

अपना कैदी बना लिया। इस प्रकार हिन्दुस्थान में एक बार फिर से हिन्दुपदपादशाही स्थापित हो गई। मुसलमानों से छीने हुए राज्य को अभी हम संभाल भी न पाये थे कि हम पर अंग्रेजों ने चोटी की। १८५७ के विद्रोह में हमारे वीरों ने इनसे भयंकर मुठमेड़ की और अन्ततः हम पराजित हुए, परन्तु कौन जानता है कि एक दिन इसी पद से मैं अथवा मेरे से आगे की संतती का कोई व्यक्ति यह घोषणा करे कि जिस प्रकार हिन्दुओं ने भूत में अपने शत्रुओं को पराजित किया है, उसी प्रकार अंग्रेजों को हरा कर एक बार फिर स्वतंत्र हिन्दुराज्य स्थापित हो गया है।"
इस भाषण ने हिन्दुओं में नवीन जीवन का संचार किया। जिस प्रकार भूख से तड़प-तड़प कर मरते हुए जर्मन लोगों को हर हिटलर ने योरुप में सर्वथा उपेक्षित रोमन लोगों को सिन्योर मुसोलिनी ने, और मृतप्राय तुर्क लोगों को अतातुर्क कमालापाशा ने भूत कालीन इतिहास स्मरण करा कर सुदृढ़ राष्ट्र का रूप दे दिया, उसी प्रकार सावरकर ने भारत के अट्ठाईस करोड़ हिन्दुओं को उनका स्वर्णिम भूत याद करा कर शक्तिसम्पन्न राष्ट्र के रूप में खड़ा करने का उद्योग आरम्भ किया। इस प्रकार हिन्दुसभा जो अभी तक एक धार्मिक संस्था समझी जाती थी उसने अब उग्र राजनीतिक संस्था का रूप धारण कर लिया। इस नवीन संदेश को लेकर इन्होंने उत्तरीय भारत के प्रायः सभी प्रमुख नगरों का भ्रमण किया। आज पेशवाओं की राजधानी पूना में, कल मराठों के गढ़

मुम्बई में फिर शिंदे के ग्वालियर में, लक्ष्मीबाई के झाँसी में, महाराज युधिष्ठिर के इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में, महाराज पृथ्वीराज के अजयमेरु (अजमेर) में, महाराजा रणजीतसिंह के लाहौर में सिक्खों के तीर्थराज अमृतसर में, भारतीय पेरिस-हैदराबाद सिंध में, आर्य्यों के प्राचीन बन्दर देवल (कराची) में, उद्यानों के नगर लखऊन में, नाना साहब के कानपुर में और फिर भोंसलों के नागपुर में—सभी जगह हिन्दू राजनीति का स्पष्टीकरण किया। जहाँ भी ये गये इनका भव्य स्वागत हुआ और जनता हज़ारों की संख्य में भाषण सुनने आई। दिल्ली में जैसा सम्मान इनका किया गया वैसा अब तक किसी नेता का नहीं हुआ। उस दिन हिन्दुओं ने प्रसन्नता में मेवा और शर्बत बाँटा। कपड़े वालों ने रेशम और सोने चाँदी का काम किये हुए बहुमूल्य वस्त्रों से अपनी दुकानें सजायीं। सुन्दर शोभायात्रा निकली और लगभग ५० हज़ार व्यक्ति भाषण सुनने गये। इनके त्याग और कर्त्तव्य-परायणता के कारण १९३८ में इन्हें दुबारा राष्ट्रपति चुना गया।

नागपुर में इनकी छः मील लम्बी नगरयात्रा छत्रपति शिवाजी की विजययात्रा के तुल्य थीं। लाठी और भालाधारी हज़ारों हिन्दू युवक सैनिक वेष में चल रहे थे। सभी ओर गेरुआ ध्वजायें दृष्टिगोचर होती थीं। दो अश्वों से खींचे जा रहे रथ में रजतछत्र के नीचे सावरकर बैठे हुए थे। ऊपर से विमान पुष्पवृष्टि कर रहा था। इस बार नागपुर में अध्यक्षपद से भाषण देते हुए इन्होंने

हिन्दुओं के एक राष्ट्र होने की घोषणा की। इसकी व्याख्या करते हुए इन्होंने कहा "हमें सम्प्रदाय कहना मूर्खता है। हम हिन्दू स्वतः एक राष्ट्र हैं। जिस प्रकार जर्मनी में जर्मन लोग राष्ट्र हैं और यहूदी सम्प्रदाय हैं। टर्की में तुर्क लोग राष्ट्र हैं और अरब तथा आरमीनियम सम्प्रदाय हैं, उसी प्रकार हिन्दुस्थान में हिन्दू लोग राष्ट्र हैं और मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि सम्प्रदाय हैं।" कांग्रेस द्वारा हिन्दुमहासभा को साम्प्रदायिक घोषित करने का यही एक उचित प्रतिकार था। जब हिन्दू एक राष्ट्र हैं तो उनकी भाषा, संस्कृति, सभ्यता और संस्था राष्ट्रीय होने से हिंदुमहासभा स्वयं ही राष्ट्रीय बन जाती है। यदि हिन्दूमहासभा हिन्दू हितों की रक्षा करने से साम्प्रदायिक है तो विश्वभ्रातृत्त्व की दृष्टि से 'हिन्दुस्थान की रट लगाने वाली कांग्रेस भी साम्प्रदायिक हो जाती है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए इन्होंने घोषित किया "यदि आपके हिन्दुस्थानी राष्ट्रवाद के सम्मुख हिन्दू राष्ट्रवाद साम्प्रदायिकता है तो क्या आपको हिन्दुस्थानी कहना विश्व-बन्धुत्त्व की दृष्टि में संकीर्णता नहीं है? मानवता के नाते सब मनुष्य समान हैं, फिर आप यह मेरा देश और वह पराया ऐसा क्यों सोचते है? आप हिन्दुस्थानी देशभक्त ही क्यों हैं, ऐबिसी-नियन देशभक्त क्यों नहीं और ऐबिसीनिया में जाकर उनकी स्वतन्त्रता के हेतु क्यों नहीं लड़ते? इसका अभिप्राय यह है कि आप ऐबिसीनियन लोगों की अपेक्षा यहां के लोगों से अधिक

सामीप्य अनुभव करते हैं। यदि ऐसा ही है तो एक हिन्दू का दूसरे हिन्दू के प्रति प्रेम रखना किस प्रकार दूषित हो सकता है? यथार्थता यह है कि राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता-दोनों आपेक्षिक बातें हैं। राष्ट्रीयता जब तक संरक्षणात्मक रहती है वह ठीक होती है, परन्तु जब वह आक्रमणात्मक हो जाती है तो वह बुरी हो जाती है। यही बात साम्प्रदायिकता के विषय में भी सत्य है। हिन्दुसभावादी दूसरों के अधिकार को रत्ती भर भी छीनना नहीं चाहते और न वे कोई अनुचित मांग ही मांगते हैं। इस लिये साम्प्रदायिक शब्द उनके लिये कदापि घृणावाचक नहीं हो सकता। यह मुसलमानों के लिये अवश्य निन्दात्मक हो सकता है, क्योंकि उनकी सब मांगें हो अनुचित हैं।" मुस्लिमलीग की बढ़ती हुई अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए सावरकर ने कहा 'मुस्लिमलीग ने अपने कराची अधिवेशन में घोषणा की है कि यदि हिन्दुओं ने हमारी मांगें न मानी तो हम चैकोस्लोवेकिया के सुडेटन जर्मनों का खेल खेलेंगे, परन्तु मुसलमानों को याद रखना चाहिये कि यह उक्ति दोनों ओर चरितार्थ होती है। यदि मुसलमान इस देश के विरुद्ध आचरण करेंगे और समय रहते हिंदुओं में कोई हिटलर पैदा हो गया तो वह मुसलमानों से ऐसा व्यवहार करेगा जैसा कि हिटलर ने जर्मन यहूदियों के साथ किया है।" इसी अधिवेशन में महासभा ने निजामराज्य के विरुद्ध निःशस्त्र-प्रतीकार करने की घोषणा की।[१८]

वर्षों से निजामराज्य के हिन्दू वहां के मुस्लिम शासन में पीड़ित हो रहे थे। राज्य में हिन्दुओं की संख्या ८५वे प्रतिशत होने पर भी शासन मे उनका हाथ न के बराबर था। उनको मातृभाषा नष्ट करके बलपूर्वक उर्दू थोपी गई थी। धार्मिक उत्सव और सभा जलूस आदि निकालने पर प्रतिबन्ध था। भग्न मन्दिरों का निर्माण भी न हो सकता था, फिर नयों को तो बात ही दूर थी। विद्यार्थी लोग अपने आश्रमों मे भी 'वन्देमातरम्' न गा सकते थे। राज्य की ओर मे प्रतिवर्ष लाखों रुपया हिन्दुओं को मुसलमान बनाने मे व्यय किया जाता था। राजकीय दान का पचानवे प्रतिशत मुस्लिम संस्थाओं को दिया जाता था। हिंदुओं को धर्मभ्रष्ट करने के लिये नाना प्रकार के अनुचित उपाय बर्ते जाते थे। शिक्षणालयों मे हिन्दुविरोधी पुस्तके पढाई जाती थीं और शिक्षक भी विद्यार्थियों को प्रायः हिन्दुविरोधी व्याख्यान दिया करते थे। तब लीग का इतना जोर था कि जेलों तक मे हिंदू बन्दियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाता था। धर्मप्रचार, विशेषतया वैदिकधर्म के प्रचार मे [illegible] थी। बाहर का कोई हिन्दू प्रचारक राज्य मे न जा सकता था। हवनकुण्ड न खोदे जा सकते थे। ओम्पताका फहराना अपराध था। मृतसंस्कार करने पर भी दण्ड दिया जाता था। मुस्लिम आततायी हिन्दुओं पर खुले आम अत्याचार करते थे परन्तु उनके विरुद्ध राज्य की ओर से कोई कार्यवाही न की जाती थी।

इन शिकायतों को दूर करने के लिये जनता ने प्रार्थनापत्र भेजे, प्रतिनिधिमण्डल भेजे, रेज़ीडेण्ट और वायसराय के कानों तक अपनी आवाज़ पहुँचाई गई। वैधानिक उपायों से प्रतिवर्ष उद्योग करने पर भी जब सुनाई न हुई तो दिसम्बर १९३८ को शोलापुर में आर्यसमाज ने और नागपुर में हिन्दुमहासभा ने इन अत्याचारों का अन्त करने के लिये धर्मयुद्ध की घोषणा कर दी। इस आन्दोलन का संचालन करने के लिये हिन्दुसभा की ओर से सावरकर सर्वाधिकारी बनाये गये।

यह आन्दोलन यथार्थ में धर्मयुद्ध था। जितना यह धार्मिक था उतना ही वीरतापूर्ण भी था। सोलह हज़ार योद्धाओं ने इस युद्ध में भाग लिया। दस हज़ार आर्यसमाजी और छः हज़ार हिन्दुसभावादियों ने निज़ाम राज्य के कारागृहों की यन्त्रणायें झेलीं। इस युद्ध में केवल आर्यसमाजी और हिन्दुमहासभावादी ही सम्मिलित नहीं हुए। यद्यपि प्रधानरूप से ये ही इस संग्राम का संचालन कर रहे थे, परन्तु व्यापक रूप से समस्त हिंदू भाइयों ने हिंदूध्वजा के नीचे चाव से भाग लिया था। इस युद्ध ने इस बात को प्रमाणित कर दिया कि हिन्दुओं में विविध मतमतान्तर और जाति भेद के होते हुए भी पान हिंदुत्त्व की भावना अभी तक विद्यमान है। हज़ारों हिंदू अपने परिजन और प्रियजनों को छोड़ कर, अपनी जान संकट में डाल कर, घरबार छोड़ कर स्पेशल ट्रेनें भर कर हैदराबाद के इन यिन्दुओं की सहायता के

लिये चल पड़े जिन्हें उन्होंने कभी देखा न था और जिन से उनका व्यक्तिगत रूप से कोई परिचय तक न था। बंगाली और बिहारी, मरहट्टा और मद्रासी, पंजाबी और सिंधी, ब्राह्मण और भंगी, समाजी और सनातनी, जैनी और लिंगायत, धनी और निर्धन—सब एक होकर हिन्दू झण्डे के नीचे हिन्दू गौरव के लिये निकल पड़े। उन्हें अकथनीय कष्ट सहने पड़े। किरचें, लाठियों, मार, भूखप्यास और मृत्यु तक का सामना करना पड़ा, परन्तु वे मरते दम तक "हिन्दुस्थान हिन्दुओं का" और 'हिन्दुधर्म की जय" बोलते रहे। उन हिन्दू संगठनवादियों का उदाहरण लीजिये जिन्हें 'वन्देमातरम्' कहने पर बेंत मारे गये अथवा 'हिन्दुस्थान हिन्दुओं का" कहने पर लाठी वर्षा की गई। वे प्रत्येक बेंत की मार पर या लाठी की चोट पर "हिन्दुस्थान हिन्दुओं का" नारा लगाते थे। इन यातनाओं से पीड़ित होकर कितने ही वीर स्वर्ग को सिधारे। इन धर्मयुद्ध करने वाले योद्धाओं को न तो कोई वेतन मिलता था और न उनके परिवार को कोई पैंशन ही मिलती थी। इन में से कुछ ने अपना धन्धा छोड़ दिया था और अपनी नौकरियों से त्यागपत्र दे दिया था। ये सब जानते थे कि हम निहत्थे हैं और हमारा सामना शस्त्रों से सुसज्जित लोगों से होगा। इन्हें मालूम था कि हमें यातनायें दी जायेंगी, परन्तु फिर भी ये स्वेच्छापूर्वक आगे बढ़े, क्योंकि ये बलपूर्वक भर्ती न होकर नैतिक रूप से भर्ती हुए थे। जिस समय औरंगाबाद जेल में हिन्दू

संघटवादियों पर लाठी वर्षा की गई उस समय शिवरों में स्वयंसेवकों ने अधिक नाम लिखाने आरम्भ किये। इनमें से कुछ ऐसे भी स्वयंसेवक थे जो हाल में ही निज़ामराज्य की जेलों से अपनी कैद का दण्ड भोग कर लौटे थे। उन्होंने आग्रह किया कि हमें निःशस्त्र प्रतीकार करने के लिये दुबारा भेजा जाये। सोलह सहस्र हिन्दू संघटनवादियों का यह सैन्य योरुप में लड़ने वाले अंग्रेज़ और जर्मन सैनिकों से कहीं अधिक श्रेष्ठ था।

इस आन्दोलन का एक प्रभाव व्यापक रूप से हुआ। अब तक हिन्दुओं के मस्तिष्क में ये भाव बैठा हुआ था कि कोई भी आन्दोलन चाहे वह हिन्दू हित की दृष्टि से कितना ही पवित्र क्यों न हो, जब तक कांग्रेस उसे राष्ट्रीय होने का प्रमाणपत्र न दे दे तब तक वह सफल नहीं हो सकता और काँग्रेस के इस 'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ है 'हिन्दूविरोधी'। लोगों में यह भाव घर किया हुआ था कि देशव्यापी आन्दोलन जब तक काँग्रेस के झण्डे के नीचे न किया जायेगा तब तब वह सफलता न हो सकेगा, परन्तु इस धर्मयुद्ध ने इस दुःखस्वपन को तोड़ दिया। कोहाट, बन्नू और मालाबार में मुसलमानों ने जो नरसंहार किया था उस जघन्य कृत्य की व्यापक रूप से निन्दा करने का साहस भी हिन्दुओं को न हुआ था, क्योंकि काँग्रेस ने उसे 'राष्ट्रीय' होने का प्रमाणपत्र दिया था। इस धर्मयुद्ध में भी काँग्रेस वही खेल खेलना चाहती थी। इसी लिये इसे साम्प्रदायिक, असामयिक गोलमाल गड़बड़

घुटाला आदि शब्दों से पुकारा गया। लोगों को इस धर्मयुद्ध से 'अलिप्त' रहने की शिक्षा दी गई, परन्तु इस बार हिन्दुओं ने काङ्ग्रेसी गिरजाघर से निकलने वाली धर्माज्ञाओं की उपेक्षा कर दी और हैद्राबादी हिन्दुओं को कष्ट से बचाने के लिये हिन्दू झण्डे के नीचे निकल पड़े। पेशावर से लेकर मद्रास तक समस्त देश में क्रान्ति की ज्वालायें भड़क उठीं। केवल उस एक दिन की सन्ध्या को जिस दिन 'हिन्दुराष्ट्र दिवस' मनाया गया था देश के सब प्रमुख नगरों में कम से कम एक करोड़ व्यक्तियों ने हिन्दू संगठन वादियों के आदेश से उस आन्दोलन का समर्थन किया था जिसे काङ्ग्रेस ने 'साम्प्रदायिक' आदि शब्दों से अभिशप्त किया था। औरंगाबाद जेल में अथवा हैदराबाद के दंगे में हिन्दुओं पर जो भयंकर अत्याचार हुए उनके प्रति ब्रिटिश पार्लियामेंट के कुछ सदस्यों की सहानुभूति हिन्दुसभा प्राप्त कर सकी, किन्तु काँग्रेस के अग्रगामी, पश्चात्गामी अथवा स्थिरगामी—किसी भी सम्प्रदाय ने उस समय आगे बढ़ कर निज़ाम सरकार की निन्दा तक नहीं की। प्राँतीय अथवा केन्द्रीय धारासभाओं में इस विषय पर वादविवाद तक नहीं किया, परन्तु हिन्दुओं की छोटी सी रियासत राजकोट में यही मंत्रीगण समूह रूप से त्यागपत्र तक देने की धमकी दे रहे थे। यदि उस समय हिंदुसभावादियों के मंत्री-मण्डल होते तो इन अत्याचारों के प्रति ऐसी हृदयहीन उपेक्षा कभी न करते। वे इन अत्याचारों को रोकनेका प्रबल प्रयत्न करते।

जब काश्मीर के मुसलमानों ने बाहर के मुसलमानों के सहयोग से राज्य में हत्याकांड मचाया तो गांधी जी की अहिंसक लेखनी ने लिखा था "यदि काश्मीर के हिंदू नरेश अपनी मुसलमान प्रजा को सन्तुष्ट नहीं कर सकते और उनका असन्तोष नहीं मिटा सकते तो उन्हें नैतिक रूप से उन पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। काश्मीर नरेश को चाहिये कि वे राज्य को छोड़ कर काशीवास करें।" गांधीजी ने निजाम साहब को यह परामर्श क्यों नहीं दिया कि यदि आप अपनी प्रजा को प्रसन्न नहीं रख सकते तो आप राज्य छोड़ कर मक्का चले जाइये ? इसके विपरीत उन्होंने लिखा था "मैं सारे सत्याग्रह के समय इस बात से बहुत अधिक चिंतित था कि श्रीमान् हिज़ ऐग्ज़ाल्टिड हाइनेस निजाम को न सताया जाये।" इन विरोधी चालों के होते हुए भी इस धर्मयुद्ध में अपूर्व सफलता मिली। जिस समय भारत का सब से बड़े नेता गांधी जी जिनकी पीठ पर आठ प्रांतों की सरकारें थीं, जिनके एक हाथ में फिडरल कोर्ट के चीफ जस्टिस श्रीयुत ग्वेयर का निर्णय था और दूसरे हाथ में आठों प्रांतों के मंत्रिमण्डलों के त्यागपत्र थे, वह व्यक्ति जब हिंदुस्थान की छोटी सी रियासत राजकोट से हार मान कर खाली हाथ लौटा था उसी समय भारत के सब से उपेक्षित नेता वीर सावरकर ने निजाम सरकार, मुस्लिम लीग, ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस सरकारों के भयंकर विरोध और प्रतिबन्धों के होते हुए भी हिंदुस्तान की

सबसे बड़ी और सबसे अधिक निरङ्कुश रियासत हैद्राबाद के निजाम के घुटने टिका दिये थे।

इस प्रकार एक शताब्दी पश्चात् बाजीराव पेशवा के ही एक वंशज ने निजाम पर विजय पाकर हिन्दुध्वज की प्रतिष्ठा स्थापित की। छः मास की लम्बी लड़ाई के पश्चात् १९ जुलाई को निजाम ने नवीन सुधारों की घोषणा की। इनके द्वारा हिन्दुओं के धार्मिक, नागरिक और राजनीतिक अधिकार स्वीकृत किये गए। यद्यपि ये सुधार असन्तोषजनक थे, तथापि 'प्रतियोगी सहयोग' की भावना से हिन्दुसभा ने अन्दोलन स्थगित कर दिया। इस आन्दोलन द्वारा सावरकर और हिन्दुसभा के प्रभाव में बहुत वृद्धि हुई में कांग्रेस के समर्थन बिना भी कोई आन्दोलन चल सकता है और उसमें हज़ारों व्यक्ति जेल जा सकते हैं, यह विचार लोगों के लिये बिल्कुल नवीन था। हिन्दुसभा के नाम पर हिन्दुध्वजा के मान में हज़ारों व्यक्तियों का जेल जाना, हिन्दू समाचारपत्रों की ज़मानतें ज़ब्त होना, हिन्दू नेताओं का दण्डित होना, हिन्दू व्याख्याताओं का निर्वासन और ज़बान बन्दी—इन सब बातों ने हिन्दुसभा और इस के योग्य प्रधान सावरकर को चर्चा का प्रमुख विषय बना दिया। वह कौन है, कहाँ रहता है, इतने वर्ष तक वह कहां रहा, उसका इतिहास क्या है आदि प्रश्न सब ओर से पूछे जाने लगे। यह चर्चा सर्वसाधारण तक ही सीमित न रही, कांग्रेस और मुस्लिम लीग जैसी शक्तिशाली संस्थाओं का

सामना करने के कारण बृटिश और भारत—दोनों सरकारों का ध्यान भी इनकी ओर आकृष्ट हुआ।

इसी बीच योरुप की राजनीतिक परिस्थिति निरन्तर चिन्ताजनक होने लगी। डांज़िग के प्रश्न पर जर्मनी और पौलैंड की सरकारों का मनमुटाव बढ़ने लगा। रूस और जर्मन की संधिवार्ता ने परिस्थिति और भी भीषण बना दी। जर्मनी के सर्वाधिकारी हर हिटलर द्वारा डाँज़िग पर आक्रमण कर देने से ब्रिटिश सरकार ने पौलैण्ड के प्रति वचनबद्ध होने के कारण जर्मनी के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया। ब्रिटिश सरकार के युद्ध के फंसने से साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों को भी इसमें भाग लेना पड़ा। परिणामतः सम्राट के प्रतिनिधि वायसराय लार्ड लिनलिथगो साहब ने भी भारत की ओर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटेन को आपत्ति में फंसा देख कर भारत की विविध संस्थाओं ने सहयोग देने के लिये अपनी शर्तें ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रक्खीं। हिन्दुसभा की ओर से सावरकर ने घोषणा की "पराधीन होने से भारत की रक्षा का विषय अंग्रेज़ और हिन्दू—दोनों के लिये समान है। यदि अंग्रेज़ सरकार हिन्दुओं का ऐच्छिक सहयोग प्राप्त करना चाहती है तो उसे आवश्यक है कि वह वचन दे कि 'साम्प्रदायिक निर्णय' में संशोधन किया जायेगा, सेना में 'युद्धप्रिय' और 'अयुद्धप्रिय' का भेद हटा कर राष्ट्रीय दृष्टि से भर्ती की जायेगी। भारत का

भावी विधान हिन्दुसभा की स्वीकृति के बिना न बनाया जायगा और केन्द्र में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना की जायेगी तथा युद्ध की समाप्ति पर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायेगा।" जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिये वायसराय महोदय ने विविध राजनीतिक संस्थाओं के नेताओं से भेंट की। ६ अक्तूबर १६३६ को वायसराय ने हिन्दुसभा के प्रधान सावरकर से एक घण्टे तक वार्तालाप किया। यह भेंट बहुत आश्चर्यजनक थी। जिस व्यक्ति को अंग्रेज़ सरकार ने दो जन्म का कारावास देकर जीवित देखना पाप समझा था, उसी व्यक्ति से उसी सरकार का प्रतिनिधि इनको अपने सामने बिठाकर सहायता रूपी जीवन की मांग कर रहा था। संसार में बिरले ही महापुरुषों को ऐसे दिन देखने को मिले हैं। ऐसा ही दृश्य एक दिन गेरिबाल्डी ने देखा था। वह गेरिबाल्डी जिसे प्राणदण्ड की सजा दी गई थी, सिसली टापू को जीतने के कारण उसे ही इटली के राजा के साथ राजकीय रथ पर आरूढ़ होकर शाही स्वागत देखने का सौभाग्य मिला। जितने भी व्यक्ति वायसराय से भेंट करने गये वे सब अपनी-अपनी संस्था का संकीर्ण दृष्टिकोण लेकर गये, परन्तु हिंदुराष्ट्र का प्रश्न रखने वाला व्यक्ति एकमात्र सावरकर ही था। इस प्रकार पेशवायुग के पश्चात यह प्रथम ही अवसर था जब अखिल हिन्दुराष्ट्र ने एक व्यक्ति के रूप में अपनी मांग विदेशी सरकार के सम्मुख रक्खी थी। इस भेंट ने सावरकर

के प्रभाव में और भी वृद्धि की और समस्त भारत के राजनीतिज्ञों का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट हुआ।

अपूर्व कार्यक्षमता तथा नीतिमत्ता के कारण १६३६ में इन्हें तीसरी बार राष्ट्रपति चुना गया। इस वार हिन्दुसभा के कलकत्ता में हुए महाअधिवेशन में जैसा इनका स्वागत हुआ वैसा बड़े-बड़े राजाओं को भी कठिनता से प्राप्त होता है। इनकी शोभा यात्रा में हिन्दुओं के विविध अङ्गों ने चाव से भाग लिया था। बड़ी-बड़ी धार्मिक संस्थाओं, अखाड़ों और विद्यालयों से लेकर अछूतों तक ने भाग लिया। भारतीयों के अतिरिक्त सीलोनी, बर्मी, चीनी और जापानी भिक्षु भी अपनी-अपनी धर्मपताकाओं और वाद्यों के साथ चल रहे थे। फूलों से बने एक छत्र के नीचे अश्वरथ पर सावरकर बैठे हुए थे। यद्यपि अधिवेशन की तय्यारी पन्द्रह दिन में ही की गई थी, फिर भी मण्डप इतना सुन्दर बनाया गया था कि आज तक किसी संस्था ने ऐसे भव्य मण्डप में अपना अधिवेशन नहीं किया। हिन्दुसभा का कलकत्ता अधिवेशन कांग्रेस के बड़े से बड़े अधिवेशन से टक्कर ले रहा था। भारत के लगभग एक लाख व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया था। सारे बङ्गाल में हिन्दू भावना का समुद्र हिलोरें मार रहा था। इस बार राष्ट्रपति के पद से सावरकर ने जो भाषण दिया, उसे यदि 'राष्ट्रीय धर्म पुस्तक' कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं है। अहमदाबाद में सावरकर ने हिन्दुओं में आत्मगौरव की भावना भरी, नागपुर में

हिंदुओं के एक राष्ट्र होने का प्रतिपादन किया और कलकत्ते में हिंदुराष्ट्र की शासनप्रणाली की रूपरेखा रक्खी। इस दृष्टि से यह भाषण महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार वैदिकधर्मी 'वेद' को, पारसी 'ज़िंदावस्था' को, बौद्ध 'धम्मपद' को इसाई 'बाइबल' को, मुसलमान 'कुरान' को आर्य्यसमाजी 'सत्यार्थप्रकाश' को सम्माजवादी 'कैपिटल' को और नाज़ी 'मीङ् काफ' को अपनी धर्मपुस्तक मानते हैं, उसी प्रकार हिंदूसंघटनवादी इस भाषण को राष्ट्रीय धर्मपुस्तक' के रूप में देखते हैं। अनेक संघटनवादी इसे धर्मपुस्तक की तरह सदा अपने साथ रखते हैं। इस भाषण का प्रभाव व्यापक रूप से हुआ। हिंदुसभा की राष्ट्रीयता ने कांग्रेसी किले को हिला दिया। सैंकड़ों व्यक्ति जो अब तक कांग्रेस के मिथ्या राष्ट्रवाद में फंसे हुए थे, उसे त्याग कर स्पष्ट रूप से हिंदुसभा में सम्मिलित हो गये। इन व्यक्तियोंमें कई व्यवस्थापिक सभाओं के सदस्य तक थे जो बीस-बीस वर्ष से कांग्रेस में प्रमुख नेता के रूप में काम कर रहे थे। भारत भर के पत्रों ने इस भाषण पर अग्रलेख लिखे। विरोधियों ने भी सावरकर की उग्र देशभक्ति की प्रशंसा की। वायसराय महोदय उन दिनों कलकत्ते में ही थे। उन्होंने अपने व्यक्तियों को भेज कर निजू रूप से हिंदुसभा की शक्ति और कार्यप्रणाली से परिचय प्राप्त किया। सौभाग्य से नैपाल नरेश भी उन दिनों कलकत्ते आये हुये थे। इस अधिवेशन का प्रभाव उन पर भी पड़ा। हिंदुमहासभा द्वारा

दिये गये मानपत्र के उत्तर में उन्होंने अखिल हिन्दुत्त्व की भावना से हिंदुओं से बंधे हुए सांस्कृतिक, धार्मिक और रक्तसम्बन्धि ऐक्य के प्रति गर्व प्रदर्शित किया। बंगाल के प्रधान मंत्री मौ० फजलुलहक जो कुछ ही दिन पूर्व कलकत्ते में अधिवेशन होने की आज्ञा तक न देते थे और जिन्होंने जब्बलपुर के मुस्लिमलीग अधिवेशन में हिंदुओं के भद्दे शब्दों से स्मरण किया था, वही हिंदुसभा के आंदोलन से इतने भयभीत हुए कि उन्होंने अपने शब्दों के लिए सार्वजनिक क्षमा याचना की और बंगाल प्रांतीय हिंदुसभा के अधिकारियों से मिल कर समझौता करने को व्याकुल हो उठे। हिंदुसभा के बढ़ते हुए प्रभाव का यही एक उदाहरण पर्याप्त है कि इस बार विहार, यू० पी० और मद्रास— तीनों प्रांतों में इस बात की स्पर्धा सी रही कि कौन अपने यहां आगामी अधिवेशन बुलाये तीन घंटे के गरमागरम वादविवाद के पश्चात् अगला अधिवेशन मद्रास में होना निश्चय हुआ। कलकत्ता अधिवेशन के कुछ ही दिन बाद उड़ीसा, आंध्र तामिलनाड और कर्नाटक में भी जो अभी तक हिन्दू भावना से अछूते थे, हिन्दुत्त्व की ज्वालाएं धधकती दिखा दीं। इस आंदोलन के आधार में सावरकर के व्यक्तित्व, त्याग, साहस और अनुपम वक्तृत्त्वशक्ति ने विशेषरूप से प्रभाव डाला। प्रभु करे, कि सावरकर चिरंजीवी हों और उनके नेतृत्त्व में हिंदुराष्ट्र अपनी पराधीनता की शृंखलाएं तोड़ कर पूर्ण स्वातन्त्र्य को प्राप्त करे।

हिन्दुओ म आन्दोलन